सर्जना

2017-18

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

नैक द्वारा "ए" श्रेणी प्राप्त

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कुलगीत

भारतीय परम्परा की पोषिका सम्मानदा।
नव-पुरातन का समन्वय आर्यमहिला ज्ञानदा॥

कला विद्या कर्म की बहती त्रिवेणी है यहाँ।
ग्रन्थ वीणा से सुसज्जित शोभती हैं शारदा॥

पूज्य ज्ञानानन्द जी के त्याग-तप की भूमि यह।
नारियाँ बनती यहाँ संस्कारयुक्ता पुण्यदा॥

शिक्षिता होतीं तथा शुभकर्म पथ पर दीक्षिता।
अन्नपूर्णा की कृपा मिलती यहाँ सुखसौख्यदा॥

आर्य महिला ज्ञानसंस्था दिव्य गायत्री जहाँ।
ज्ञानरश्मि बिखेर कर भरती समुज्जवल सम्पदा॥

डॉ. कपिलदेव पाण्डेय

सर्जना

2017-18

संरक्षक

प्रो० रचना दूबे

प्राचार्या

सम्पादक

डॉ० चन्द्रकान्ता राय

अध्यक्ष, संस्कृतविभाग

सम्पादकमण्डल

संस्कृतविभाग

डॉ० जया मिश्रा

डॉ० पुष्पा त्रिपाठी

डॉ० दिव्या

डॉ० त्रिपुरसुन्दरी

डॉ० सुजाता पटेल

बंगला-अनुभाग

बंगलाविभाग

डॉ० बिन्दू लाहिड़ी

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी

नैक द्वारा "ए" श्रेणी प्राप्त

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

दूरभाष : 0542–2411893 E-mail : ampgc.vns@gmail.com Visit us at : www.aryamahilapgcvns.org

सर्जना

संरक्षक

प्रो. रचना दूबे

प्राचार्या

सम्पादक

डॉ. चन्द्रकान्ता राय

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी

अङ्क	:	अष्टम
संस्करण	:	2018
मूल्य	:	150.00
मुद्रण	:	सन् प्रिंटिंग वर्क्स, जगतगंज, वाराणसी

प्रकाशन

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी

इस पत्रिका में प्रकाशित विषय लेखकों के अपने विचार हैं। सम्पादक इनसे सहमत हों, यह आवश्यक नहीं।

परिसर में अधिष्ठित भगवती अन्नपूर्णा

स्वजनशरणदक्षे दक्षजे पूर्णकामे सुरहितकृतरूपे निर्विकल्पे निरीहे।
श्रुतिसमुदयगीते सच्चिदानन्दरूपे जननि निटिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद॥

श्री भारतधर्ममहामण्डल के संस्थापक महर्षि ज्ञानानन्द जी

ज्ञानानन्दो यतिश्रेष्ठोऽध्यात्मविच्छास्त्रपारगः।
ज्ञानोन्नत्यै भारतानां धर्ममण्डलकं व्यधात्॥
ऋषिका किल विद्यानां विद्यादेवी तमाश्रिता।
आर्यमहापरिषद् व्यधान्महिलानां च हिताय सा॥
तदङ्गभागार्यमहिला महाविद्यालयो वरः।
विभाति ज्ञानविज्ञानकलासौन्दर्यभावितः॥

डॉ. चन्द्रकान्ता राय

Prof. Yugal Kishor Mishra
FORMER - VICE-CHANCELLOR
J.R. RAJASTHAN SANSKRIT UNIVERSITY, JAIPUR
FORMER - SECRETARY, M.S.R.V.V.P.
(MINISTRY OF HRD, GOVT. OF INDIA)
TRUSTEE-JNANA-PRAVAHA, VARANASI
(CENTRE FOR CULTIURAL STUDIES & RESEARCH)

PROFESSOR - Centennial Chair
Bharat Adhyayan Kendra
Faculty of Arts
Banaras Hindu University, Varanasi
Fax : 0542-2366971
Mob : 09415224713, 08604074273
E-mail : jnanapravaha.vns@gmail.com

दिनाङ्क : 22 मई, 2018

शुभाशंसा

किसी संस्था के शैक्षणिक उत्कर्ष में पुस्तकों एवं पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। मुझे आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी की वार्षिक पत्रिका ''सर्जना'' के कुछ अङ्कों के अवलोकन का अवसर प्राप्त हुआ है। इसके पर्णों में महाविद्यालय के शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं विविधविषयक विशिष्ट विचारों को प्रत्यक्ष कर मैं आशान्वित हूँ कि प्रकाश्यमान अग्रिम अंक भी छात्र एवम् अध्यापकवर्ग के हित के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। मैं ''सर्जना'' के नियमित प्रकाशन की शृंखला को अविच्छिन्न बनाये रखने के लिए सम्पादकों–संस्कृतविभागीय शिक्षकवर्ग को हार्दिक आशीर्भाव तथा शुभकामनायें प्रदान करता हूँ।

युगमिश्र

(प्रो0 युगल किशोर मिश्र)

प्रो. राजारामशुक्लः
कुलपतिः
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः
वाराणसी - 221002

नैक द्वारा 'ए' ग्रेड प्राप्त

Prof. Rajaram Shukla
Vice-Chancellor
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi - 221002
Phone : (Off.) 0542-2204089
(Resi.) 0542-2204213
2206617

दिनाङ्कः : 11 मई, 2018

शुभाशंसा

यह अतीव हर्ष का विषय है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से सम्बद्ध आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी 'सर्जना' नाम से पत्रिका का प्रकाशन करने जा रहा है।

संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला तथा अंग्रेजी में लिखी गयी रचनायें इसके बहुभाषिक स्वरूप का प्रकाशन करती हैं। ''सर्जना'' नामक पत्रिका के सम्पादन में संलग्न महाविद्यालय की प्राध्यापिकाओं एवं अन्य सदस्यों का श्रम प्रशंसनीय है जिसके लिए मैं साधुवाद तथा हार्दिक शुभकामनायें प्रदान करता हूँ।

(प्रो० राजाराम शुक्ल)

।। श्री जगन्मात्रे नमः ।।
असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।
(श्री आर्य महिला-हितकारिणी महापरिषद् द्वारा संस्थापित और संचालित)

Tel. : 0542-2411893
Fax : 0542-2401287
E-mail : ampgc.vns@gmail.com
Website : www.ampgc.ac.in

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज

वाराणसी
नैक द्वारा ग्रेड ''ए''
(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

दिनाङ्क : 21 मई, 2018

शुभापेक्षा

शिक्षण संस्थाओं का पवित्र एवं परम उद्देश्य ज्ञान के संस्कार से बुद्धि को उत्कर्ष तथा दृढ़ता प्रदान करना है। श्री आर्य महिला हितकारिणी महापरिषद् द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं में अन्यतम आर्य महिला पी0जी0 कॉलेज इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए अनवरत प्रयत्नशील है। विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए अध्ययन–अध्यापन के अतिरिक्त संचालित अनेकानेक क्रियाकलापों में एक महत्त्वपूर्ण प्रकल्प महाविद्यालयीय वार्षिक पत्रिका 'सर्जना' का प्रकाशन है। नाना अभिव्यंजनाओं के माध्यम से यह 'सर्जना' विद्यार्थियों को ज्ञेय विषयों की ग्राह्यता के साथ ही उनके चारित्रिक विकास, आत्मविश्लेषण की क्षमता, पारस्परिक समन्वय, विसंगतियों के प्रतिरोध तथा सार्वजनीन मान्यताओं के प्रकाशन हेतु प्रेरित करती है।

'सर्जना' का वर्ष 2018 का यह अङ्क प्रकाशन हेतु सज्ज है। मैं इस कृति को भव्य स्वरूप प्रदान करने में संलग्न सम्पूर्ण शिक्षक–विद्यार्थिवर्ग तथा सम्पादकमण्डल को हार्दिक शुभाशंसाएँ प्रेषित करता हूँ।

(डॉ0 शशिकान्त दीक्षित)
प्रबन्धक

।। श्री जगन्मात्रे नमः ।।
असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।
(श्री आर्य महिला-हितकारिणी महापरिषद् द्वारा संस्थापित और संचालित)

Tel. : 0542-2411893
Fax : 0542-2401287
E-mail : ampgc.vns@gmail.com
Website : www.ampgc.ac.in

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज

वाराणसी
नैक द्वारा ग्रेड ''ए''
(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

दिनाङ्क : 20.04.2018

वाराणसी नगर के मध्य में प्रतिष्ठित, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध आर्य महिला पी0जी0 कॉलेज स्थानीय विद्यार्थियों के साथ–साथ देश के विविध प्रदेशों की छात्राओं के लिए भी अध्ययन का अनुकूल परिवेश प्रदान करता है। विविध भाषाओं, संस्कृतियों एवं परम्पराओं का इस महाविद्यालय में एकत्र दर्शन होता है। राष्ट्रीय एकता एवं पारस्परिक सामंजस्य की दृष्टि से भिन्न–भिन्न प्रदेशों की सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ वैश्विक परिवेश में भारत वर्ष की व्यापकता का परिचय देती हैं।

शिक्षा, संस्कार एवं महिला सशक्तीकरण के बृहत्प्रयोजन को दृष्टि में रखते हुए यह महाविद्यालय प्रतिवर्ष वार्षिक पत्रिका 'सर्जना' का प्रकाशन करता रहा है। 'सर्जना' शिक्षण–शिक्षेणतर कर्मचारिवर्ग तथा देश के विविध अंचलों से विद्यार्जन हेतु समागत छात्राओं के बौद्धिक, व्यावहारिक एवं मानस कौशल तथा अधीत विषयों की सार्थकता के प्रकाशन का एक सशक्त माध्यम है। सम्पादन में संलग्न प्राध्यापकवर्ग पत्रिका के सुरम्य, सुरुचिपूर्ण, ज्ञान–विज्ञानसमन्वित स्वरूप को प्रस्तुत कर संस्था के शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक गौरव को विशद आयाम देने में अनवरत प्रयत्नशील हैं।

मैं 'सर्जना' के अष्टम अङ्क को उत्कृष्ट स्वरूप प्रदान करने में संलग्न समस्त विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा सम्पादकमण्डल को हार्दिक साधुवाद एवं शुभकामनाएँ प्रदान करती हूँ।

प्रो0 रचना दूबे
प्राचार्या

सम्पादकीय

भारत वैदिक धर्म एवम् अध्यात्मविज्ञान की चिन्तनपरम्परा से उद्भूत आस्था एवं धर्मनिष्ठा से प्रवर्तित लोकमर्यादा का संरक्षक, संस्कृतिप्रधान देश है जहाँ सृष्टि के आरम्भ से लेकर संहारपर्यन्त प्राणिजगत् में मानवमात्र की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। भारतीय संस्कृति मानव इतिहास की गतिशीलता को ह्रास से विकास की ओर न देखकर विकास से ह्रास की ओर देखती है। सृष्टि के आरम्भिक युग को ज्ञान, ऊर्जा और संस्कारों की दृष्टि से उत्कृष्ट माना गया है। कालक्रम में मानवीय गुणों का ह्रास और यान्त्रिक आविष्कारों पर निर्भरता लोक में घातक, कृत्रिम प्रवृत्तियों को जन्म देती है तथा सहज चिन्तन एवं तदनुसार आचरण के अभाव से नाना आपदायें तथा विसङ्गतियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। आज के भोगप्रधान विश्व में आतङ्क एवं पर्यावरणप्रदूषण की समस्यायें ऐसी ही विपरीत, विनाशकारी परिस्थितियों की ओर सङ्केत कर रही हैं।

ज्ञान–विज्ञान के स्रोतभूत शास्त्रों के निर्देश का परित्याग कर, स्वैर आचरण करने वाला मनुष्य आत्मविमुग्ध और अहंकारी बन अन्ततः नितान्त एकाकी, निराश्रय होकर दुःखद परिणाम भोग रहा है। कोटि–कोटि जीवों की प्रजातियों का क्षरण प्राकृतिक आपदाओं के रूप में पारिस्थितिकीय असन्तुलन की प्रत्यक्ष चेतावनी दे रहा है। मनुष्य का कर्म जब लोकहित–चिन्तन से समन्वित न हो तो लोकमर्यादा को संरक्षित रख पाना, भूतवर्ग में सामञ्जस्य स्थापित करना कठिन हो जाता है। आर्षपरम्परा से प्राप्त भारतीय ज्ञान–विज्ञान का आगार मानव–हृदय एवं बुद्धि को समुचित संस्कार देकर लोक के अभ्युदय तथा समस्त जड़चेतन के स्थैर्य हेतु कर्तव्यबोध प्रदान करता है। निःसन्देह लोक की अधिकाधिक विकलताएँ मानवीय अनवधानता से सृजित हैं। कर्तव्याकर्तव्यविववेकशून्यता मनुष्य को ऐसे स्थान पर ला खड़ा करती है जहाँ औचित्य–अनौचित्य के विभ्रम से ग्रस्त मानवबुद्धि स्वत्व से शून्य हो आत्मविनाश के मार्ग का चयन का कर लेती है।

श्री आर्य महिला हितकारिणी महापरिषद्, वाराणसी के सत्संकल्प से श्रीमती विद्यादेवी जी द्वारा संस्थापित शिक्षण संस्था आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी का एक मूलभूत आयास मानव के स्वत्व एवं मानवधर्म के संरक्षण का रहा है। शिक्षकों, विद्यार्थियों के समवेत, समग्र प्रयास से प्रकाशित हो रही महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका ''सर्जना'' में मानवीय संवेदना, चेतना एवं अधीत विद्या की सार्थकता का प्रकाशन होता है। मानवीय आदर्श के प्रकाशन का बृहद् लक्ष्य लेकर यह पत्रिका शब्दमय विग्रह को धारण करती है। आराध्या माता अन्नपूर्णा के अनुग्रह, सवितृसन्निभ महर्षि ज्ञानानन्द जी की प्रेरणा तथा संस्था के संरक्षण–संवर्धन में तत्पर महाविद्यालय–परिवार के सहयोग से प्रकाशित काशी की सुप्रसिद्ध संस्था की यह पत्रिका विविध पाठ्यविषयों, समस्याओं एवम् अपेक्षाओं, चुनौतियों एवं समाधान की दिशाओं का प्रवर्तन करती हुई छात्रवृन्द को मनोबल से आप्यायित करती है। विद्या के सम्प्रेषण की यह शृंखला ''सर्जना'' के रूप में सतत वर्द्धिष्णु बनी रहे, विद्या की अधिष्ठात्री देवी वागीश्वरी से इस अभ्यर्थना के साथ ये भाव–प्रसून आपके करकमलों में समर्पित हैं।

अक्षय तृतीया, वि.सं. 2075

18 अप्रैल, 2018 डॉ. चन्द्रकान्ता राय

विषयानुक्रमणिका

1.	श्री रामस्तुति (कविता)	डॉ0 चन्द्रकान्ता राय	– 1
2.	वेदों में वर्णित दिव्य ओषधियाँ	डॉ0 पुष्पा त्रिपाठी	– 2
3.	विपस्सना	डॉ0 सुजाता पटेल	– 6
4.	धर्म की प्रतिमूर्ति राम	कु0 प्रिया	– 9
5.	लौटें भी तो कहाँ?	डॉ0 चन्द्रकान्ता राय	– 14
6.	सनातन धर्म और महामना मालवीय	डॉ0 ममता गुप्ता	– 16
7.	मेक इन इंडिया मिशनः ई–लाइब्रेरी	रीता श्रीवास्तव	– 23
8.	नारी	विकास कुमार उपाध्याय	– 26
9.	भारतीय दर्शनों में प्रतिपादित त्रैगुण्य–विवेचन	प्रियंका	– 27
10.	प्राचीन भारतीय शिक्षापद्धति में पाठ्यक्रम	जगदीशलाल	– 34
11.	Problem of Weavers in Handloom Industry	Vishwadeep Tripathi	– 40
12.	षोडश संस्कारों की सामाजिक उपयोगिता एवं महत्त्व	दीप्ति पाण्डेय	– 47
13.	अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक का वैशिष्ट्य	चन्दा प्रजापति	– 51
14.	जीवनस्य परमोद्देश्यं शान्तिः	मधुस्मिता डेका	– 55
15.	आओ, आज एक नया भारत बनाते हैं	एकता तिवारी	– 57
16.	वेदेषु राजधर्मः	प्रतीति आर्या	– 58
17.	संस्कृत काव्यशास्त्र की चिन्तन–दृष्टि	सौम्या द्विवेदी	– 60
18.	तत्त्वमसि वाक्यार्थविचार	सुदेष्णा दे	– 62
19.	स्वच्छभारतं श्रेष्ठभारतम्	आकांक्षा कुमारी मौर्या	– 67
20.	तीसरा विश्व एवं इसकी चुनौतियाँ	अर्पिता सिंह, दीपा भारती	– 69
21.	औपनिवेशिक सत्ता, राष्ट्रीय एकता	प्रतिभा गोंड, दीपा भारती	– 72
22.	Realities of Economic Growth & Governance in Uttar Pradesh	Shalini Shikha & Divya Singh	– 75
23.	कुम्भपर्व	अंशिका पाण्डेय	– 93
24.	प्रेमचन्द की कहानियों में जीवन की सच्चाई	रूपम कुमारी	– 95

25. शोषित और शोषक	प्रियदर्शी गोस्वामी	– 98
26. युवा भारत–उद्यमी भारत	सोनम उपाध्याय	– 99
27. The Hamartia of Social Networking Sites	Anupriya Rai	– 101
28. दहेज की बोली	प्रचेता सिंह	– 104
29. भाबबार कथा	डा. बिन्दू लाहिड़ी	– 105
30. प्रतिभा बसु	डा. झुमुर सेन गुप्त	– 109
31. उनिश शतक : स्त्री शिक्षा	डा. स्वप्ना बन्धोपाध्याय	– 117

श्री रामस्तुति

हे राम करुणाधाम जीवनप्राण सत्यनिधान हो।
चैतन्य हो सद्रूप हो, आनन्द के परिणाम हो।।
हर नाम के हर रूप के अन्तः समाये प्राण हो।
हर चक्षु के आलोक तुम हर मान के प्रतिमान हो।।
हर जीव के स्पन्दन तुम्हीं कल कण्ठ के मृदु गान हो।
है भू–समर्पित व्योम आधाञ्चित विबुधसर्ग ललाम हो।।
तुम श्वास हो प्रश्वास हो तुम जड–चिदन्तःकाम हो।
तुम बीज सर्जन के प्रथम तुम नित्य धर्म्य विराम हो।।
तुम सारथी जीवात्म के तुम भू भुवः स्वः ध्यान हो।
तुम सचल अविकल अटल वर तुम दूर अन्तिक धाम हो।।
नित ध्यान ध्याता ध्येय धारणशक्ति हो अभिराम हो।
तुम कर्मकण्टक के निवारण बन्ध हेतु विधान हो।
हैं पाश में उलझे जगत् के मोह में अनुबन्ध में।
पद–पद विकट भवपंकमंञ्जित द्वन्द्व के सम्बन्ध में।
हे देव तेजोमय प्रभो तुम सुपथ का सन्धान दो।
तुम कर्मपथ के हो विधायक विज्ञ परम सुजान हो।।

वेदों में वर्णित दिव्य ओषधियाँ

डॉ0 पुष्पा त्रिपाठी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, संस्कृतविभाग

'विद्' धातु से निष्पन्न 'वेद' स्वयं को सार्थक करता हुआ अपने अन्दर ज्ञान–विज्ञान के अथाह सागर को समाहित किये हुये है। वेद अनन्तकाल से आर्य जाति की अविचल श्रद्धा का केन्द्र रहा है। वेद को एकमात्र प्रमाण मानना सनातन धर्म की स्वीकृति है। वेद सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय के प्राण हैं। वह साधना रस का गम्भीर सागर और उच्च विचारों का सुखद आवास है। वेद में समस्त मानवता को पावन करने वाले उदात्त उपदेश, आधिभौतिक उन्नति की चरमसीमा, आधिदैविक अभ्युदय की पराकाष्ठा एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष का चूडान्त निदर्शन है। सनातन धर्म के आचार–विचार, धर्म–कर्म को समझने के लिए वेद का ज्ञान नितान्त अपेक्षित है। इसमें ज्ञान–विज्ञान के विविध पक्षों का अक्षय कोष विद्यमान है, जिससे वर्तमान में भी साहित्य सर्जना की प्रेरणा मिलती है।

भारतीय मनीषियों के उदात्त मस्तिष्क ने जन–कल्याण की भावना से ही विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों का संकलन किया। वेदों में ज्ञान का अथाह सागर है। भारतीय संस्कृति की अनमोल धरोहर 'वेद' को पढ़कर किसी भी क्षेत्र का व्यक्ति अपने ज्ञान के क्षितिज का विस्तार कर अपने जीवन को प्रशस्त कर सकता है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में ऐसे अनेकानेक मन्त्र हैं जिसमें अग्नि, इन्द्र, वरुण, अश्विनौ, मरुत्, आपः, पूषन्, उषस्, सोम, सविता आदि देवताओं को देवभिषक् मानते हुए उनके चिकित्सा कौशल का वर्णन है। वेदों में आयुर्विज्ञान से सम्बन्धित देवताओं में अश्विनौ का युगलस्वरूप सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। आयुर्विज्ञान की दृष्टि से ये आदर्श चिकित्सक के प्रतीक हैं। यह युग्म शल्य और चिकित्सा सत्प्रदायों का मिश्रित रूप है। इनके सर्जिकल और मेडिकल कार्यों की सुदीर्घ सूची है। उन्होंने कक्षीवान् तथा च्यवन ऋषि को पुनर्युवा बनाया, घोषा को कुष्ठ रोग से उबारा, दीर्घतमा का अन्धापन ठीक किया। दध्यङ् ऋषि के कटे सिर

का प्रतिरोपण किया। ऐसी अनेक चिकित्साओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

''ओषः पाकः दीप्तिर्वा धीयते अयामिति''— जो रस, पाक एवं तेज को धारण करती है वह औषधि है। वैदिक काल का ओषधि विज्ञान रोगों का उपचार करने की क्षमता से युक्त वनस्पतियों पर आधारित है। 'ओषधि' शब्द उन पौधों के लिए वेद में प्रयुक्त हुआ है, जिनमें रोगनिदान की शक्ति है और जो मानव जाति के लिए कल्याण कारक हैं। वैदिक ऋषियों ने वनस्पतियों के ओषधीय गुणों को पहचाना। प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तथा ओषधीय गुणों से समन्वित वनस्पतियाँ वैदिक काल के चिकित्सा जगत् में रोगों के उपचार में प्रयुक्त होती थीं। वाजसनेयी, तैत्तिरीय और मैत्रायणी संहिताओं में वनस्पतियों से विभिन्न रोगों का उपचार वर्णित है। वैदिक भिषक् को विभिन्न वनस्पतियों के गुणधर्म का पर्याप्त ज्ञान था। यजुर्वेद और अथर्ववेद में वनस्पतियों के औषधीय गुणों का उल्लेख हैं। वैदिक काल में ओषधियों को एक पौधे अथवा अनेक पौधों से प्राप्त होने वाले पदार्थों के मिश्रण से तैयार किया जाता था। वैदिककाल में वनस्पतियों के प्रयोग से अनेक रोगों का उपचार होता था।

अथर्ववेद ओषधिविज्ञान का भण्डार है। इसमें आयुर्वेद, ओषधिविज्ञान सम्बन्धी अनेक महनीय तथ्य संग्रहीत हैं। अथर्ववेद में रूपभेद से अनेक ओषधियों का वर्णन किया गया है। ओषधियाँ भैषज्य तथा अभिचार दोनों में प्रयुक्त होती हैं।

अथर्ववेद में सूर्यकिरण—चिकित्सा, अग्नि—चिकित्सा, जल—चिकित्सा, प्राणायाम—चिकित्सा, मृद्—चिकित्सा, यज्ञ—चिकित्सा, मन्त्र—चिकित्सा शल्यक्रिया, वाजीकरण एवं मणिधारण आदि का विधान वर्णित हैं।

अथर्ववेद का एक अभिधान अथर्वाङ्गिरस भी है और वह अंगिरस, अंगों के रसों अर्थात् तत्त्वों का वर्णन किये जाने के कारण आंगिरस कहलाता है। इसलिए वह आंगिरस या अथर्ववेद प्राणविद्या या शरीर—विज्ञान से भी सम्बन्धित है। इसलिए गोपथ ब्राह्मण में कहा गया कि **येऽथर्वाणःतद्भेषजम्**। अथर्ववेद के समय तक वनस्पतियों के औषधीय गुणों को ध्यान में रखकर उनसे ज्वर, अर्शरोग, त्वक्रोग, नेत्ररोग, संक्रामक रोग, केशरोग, कुष्ठ, रक्तस्राव, यक्ष्मा, गर्भरोग, श्वासरोग, उन्मत्तता आदि सर्वरोगों का उपाचार होता था।

वेदों के मतानुसार वनस्पतियों में भी प्राण समाहित रहते हैं अतः वेद में वनस्पतियों का उत्पादन करने के पूर्व उनको अभिमन्त्रित कर लोक कल्याणार्थ ग्रहण करने का विधान है।

वेद एवं आयुर्वेद के रहस्यों को भली—भाँति समझकर युक्तियुक्त आहार—विहार के

द्वारा सदाचार एवं धर्मों के द्वारा जरा एवं व्यक्ति रूपी शत्रुओं पर नियन्त्रण किया जा सकता है।

ऋग्वेद में सूर्य को समस्त रोगों का नाशक एवं अनेक प्रकार के दुःस्वप्नों को दूर करने वाला कहा गया है। विशेष रूप से उनसे हलीमक रोग अर्थात् पीलिया रोग को विनष्ट करने की प्रार्थना की गयी है। यजमान प्रार्थना करते हुए कहता है कि– हे अनुरूप दीप्ति युक्त मित्रों के मित्र सूर्य! आप उदित होकर उन्नत आकाश में चढ़कर मेरा हृदय रोग और हलीमक रोग (पीतवर्ण, पीलिया) को विनष्ट करें।

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।

हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय (ऋ0 1.50.11)

जल और ओषधियों के कारणभूत सूर्य हैं–**दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम्''** (ऋ0 1.164.52)। जल, ओषधि और सूर्य में विषविनाशक शक्ति है। एक मन्त्र में कहा गया है कि–

अदष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती।

अथो अवघ्नती हन्त्यथो विनष्टि पिनश्टि पिंषती'' (ऋ0 1.191.2)

अर्थात् ये ओषधियाँ उन अदृश्य जीवों और उनके विष को मारती है, वह कूटी–पीसी जाकर भी विषैले जीवों को नष्ट करती हैं। सूर्य से वनस्पतियों को मधुर करने की प्रार्थना की गयी है–**मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः** (ऋ0 1.90.8)। ओषधियाँ मधुर रसवर्षक होती हैं– **माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः** (ऋ0 1.90.6)।

उदित होते हुए तथा अस्त होते हुए सूर्य से पृथ्वी पर रहने वाले कीटाणुओं को नष्ट करने की प्रार्थना की गयी है–

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः।

ये अन्तः क्रिमयो गवि' ।। (अर्थ0 2.32.1)

कीटाणुओं के विषग्रन्थि को भी नष्ट करने की बात एक मन्त्र में कही गयी है–**भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः** (अथ0 2.32.6)। गुणवती ओषधियों के प्रयोग से समस्त कीटाणु परिवार के नष्ट होने की चर्चा की गयी है–**हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः** (अथर्व0 2.32.4)।

ऋग्वेद के ओषधि सूक्त में (ऋ0 10.97) अनेक रोगों और ओषधियों के नाम प्राप्त होते हैं। ओषधियों का ज्ञान, शल्यचिकित्सा में निपुणता वैदिककाल से प्राप्त होती रही है। भारतीय मनीषियों ने न केवल धर्मव्यवस्था, दर्शन एवं कर्मकाण्ड में अपितु स्थापत्यकला, चिकित्साविज्ञान, पदार्थपरिचय, यन्त्रनिर्माण आदि वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी विश्व का सफल नेतृत्व किया है। चिकित्साशास्त्र तो अनुमानतः मानव जीवन से जुड़ा होने के कारण प्राचीनतम माना जा सकता है। प्रागैतिहासिक काल में जिस प्रकार भोजन के योग्य–अयोग्य पौधों का ज्ञान हुआ होगा, उसी प्रकार ओषधियों और विषों का ज्ञान भी प्राप्त हुआ होगा।

विपस्सना

डॉ0 सुजाता पटेल
अंशकालिक प्रवक्ता, संस्कृतविभाग

बौद्ध धर्म भारत का ही नहीं अपितु विश्व के सभी मान्य धर्मों में से एक है। इतिहासविदों के अनुसार महात्मा बुद्ध ने जिस युग में जन्म लिया था, उस युग में यज्ञ जैसा उदात्त कर्म भी कलुषित हो चुका था। मेध, हिंसा और बलिकर्म महत्त्वपूर्ण हो गये थे। करुणा, कृपा, सहानुभूति जैसी भव्य भावना कपट की पृष्ठभूमि में कहीं खो गयी थी। बुद्ध ने सांसारिक मनुष्यों को दुःखी देखकर अनुभव किया कि संसार दुःखमय है तथा दुःख का हेतु है तृष्णा। बुद्ध ने इस तृष्णा को भी तीन प्रकार का बताया है– कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा। यह त्रिविध तृष्णा ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। बौद्ध दर्शन की प्रमुख मान्यता है– 'सर्वं दुःखम्' अर्थात् इस संसार में सब कुछ दुःख ही दुःख है। मानव दुःख के अस्तित्व की स्वीकृति और इस दुःख से मनुष्य को छुटकारा दिलाने का उपाय ही इस धर्म की आधारशिला है। बुद्ध ने तृष्णा को ही दुःख का कारण भी माना है और इस तृष्णा के त्याग को ही धर्म भी कहा है क्योंकि तृष्णा को त्यागकर ही मनुष्य निर्वाणप्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकता है। निर्वाण प्राप्ति के उपायों के लिए 'विसुद्धिमग्गो' नामक ग्रन्थ में विशुद्धि मार्ग का निरूपण किया गया है जिसमें भगवान् बुद्ध ने विपस्सना को भी विशुद्धि के उपाय के रूप में बताया है।

विपस्सना के विषय में कहा गया है कि विपस्सना उस विशिष्ट ज्ञान और दर्शन को कहते हैं जिसके द्वारा धर्मों की अनित्यता, दुःखता और अनात्मता प्रकट होती है। विपस्सना की भावना से साधक क्षण–क्षण में उत्पन्न और नष्ट होने वाले नाम–रूप धर्मों (रूप और मन के स्वभाव) के अनित्य स्वभाव को जानता है। तत्पश्चात् जो अनित्य है वह दुःखरूप है, इस सच्चाई का अनुभव करता है। अन्त में साधक यह जानता है कि जो नाम–रूप अनित्य तथा दुःखस्वरूप है, वह अनात्म है। इस प्रकार जब साधक नाम–रूप धर्मों के अनित्य, दुःख तथा अनात्मस्वरूप को विशेष रूप से देखने लगता है तो उसके ज्ञान को विपस्सना ज्ञान कहते हैं।

विपस्सना विद्या एक ऐसी साधना विद्या है जो समाधि की ओर ले जाती है तथा चित्त को शुद्ध करती है। प्रायः मनुष्य अतीत तथा अनागत को सोच कर सदैव दुःख की अनुभूति

करता है, तथा विभिन्न प्रकार के राग, द्वेष, काम, क्रोध इर्ष्यादि से ग्रसित होकर मलिन, अशान्त और अस्थिर चित्त वाला हो जाता है। अशान्त चित्त वाले मनुष्य को कहीं भी सुख की प्राप्ति नहीं होती जैसा कि श्रमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है– "अशान्तस्य कुतः सुखम्।"

इस विपस्सना क्रिया के द्वारा चित्त शुद्ध व शान्त होता है। विपस्सना से तात्पर्य है विशेष प्रकार से देखना। यहाँ "वि" से तात्पर्य वैज्ञानिक दृष्टि से है। विपस्सना आत्मज्ञान कराकर आत्मशुद्धि की ओर अग्रसारित करती है। इस विपस्सना विद्या का प्रथम सोपान है आनापान क्रिया। आनापान क्रिया आश्वास–प्रश्वास की वह क्रिया है जिसके द्वारा समाधि मुद्रा में बैठकर श्वास पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इसमें ध्यान का आलम्बन श्वास प्रक्रिया होती है जो मनुष्य के चित्त को भूत और भविष्य की चिन्ताओं से हटाकर वर्तमान में स्थिर करने के लिए प्रेरित करती है। विपस्सना का सम्यक् अभ्यास करने वाला प्रत्येक व्यक्ति स्वयं उसकी अनुभूति कर सकता है।

चित्त को एकाग्र करने के लिए पातंजल दर्शन में कई उपाय निर्दिष्ट किये गये हैं। योग के ये विविध साधन 'परिकर्म' कहलाते हैं। बौद्ध साहित्य में इन्हें कर्म–स्थान कहा गया है। ये विविध प्रकार के चित्त संस्कार हैं, जिनसे चित्त एकाग्र होता है। प्राणायाम योग का एक उत्कृष्ट साधन है। बौद्धागम में इसे आनापान–स्मृति–कर्म स्थान कहा गया है। 'आन' का अर्थ है सांस लेना और अपान का अर्थ है 'सांस छोड़ना'। इन्हें आश्वास–प्रश्वास भी कहते हैं। स्मृतिपूर्वक आश्वास–प्रश्वास की क्रिया द्वारा जो समाधि निष्पन्न की जाती है, वह आनापान स्मृति–समाधि कहलाती है।

जब साधक आनापान को प्रारम्भ करता है तो विपस्सना का प्रवेश होता है। विपस्सना स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाती है। विपस्सना एक प्रकार से अनुभव से होने वाला ज्ञान है जिसमें मात्र देखना ही होता है भोगना नहीं। जिसे कबीर दास जी के इस उद्धरण से समझा जा सकता है– "तुम कहते कागद की लेखी, मैं कहता आँखन की देखी।" निर्वाण के प्रार्थी को शमथ की भावना के पश्चात् विपस्सना की वृद्धि करना अति अनिवार्य है। इसके बिना अर्हत्पद में प्रतिष्ठा नहीं होती। विपस्सना एक प्रकार का विशेष दर्शन है। जिस समय इस ज्ञान का उदय होता है कि सब धर्म अनित्य हैं, दुःखमय हैं तथा अनात्म हैं– उस समय विपस्सना का प्रादुर्भाव होता है। विपस्सना प्रज्ञा का मार्ग है। इसे लोकोत्तर समाधि भी कहते हैं।

विपस्सना झूठे अन्धविश्वास पर आधारित न होकर आत्मज्ञान की विद्या है जो चित्त की शुद्धि के साथ–साथ शारीरिक व मानसिक विकारों से भी मुक्ति दिलाने में सहायक है। यद्यपि यह विद्या बौद्ध परम्परा में संरक्षित व संवर्धित हुई है तथापि इसे किसी धर्मविशेष या

सम्प्रदायविशेष का ही मानना उचित नहीं होगा क्योंकि विपस्सना विद्या चित्तशुद्धि की साधना है, दुर्गुणों का परिष्कार है, आत्मबोध कराने की विद्या है। प्रायः सभी भारतीय दर्शन ज्ञान के पूर्व विकारों से निवृत्ति और चित्त की शुद्धि को अनिवार्य रूप से स्वीकार करते हैं। प्राप्त ज्ञान को अपने आचरण में चरितार्थ करना विपस्सना है। यह अत्यन्त सरल मार्ग है जिसके माध्यम से मनुष्य आत्मपरीक्षण कर, समस्त विकारों से रहित होकर, दुःखों से निवृत्त होकर निर्वाण पद की प्राप्ति के लिए अग्रसर हो सकता है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण यह विद्या केवल भारत भूमि तक ही सीमित न होकर विदेशों में भी बहुप्रसारित विद्या हो चुकी है। विपस्सना साधना ऐसी साधना है जिसके अभ्यास से सम्पूर्ण प्राणिजगत् दुःखों से मुक्त होकर आनन्दानुभूति कर सकता है।

धर्म की प्रतिमूर्ति राम

कु0 प्रिया
अतिथि प्राध्यापक, संस्कृतविभाग

भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप में महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण प्रथम स्थान पर परिगणित होता है। आदिकाव्य होने के साथ–साथ यह भारतीय परिवारों का धर्मग्रन्थ है, जहाँ उनके आचार–विचार, सभ्यता तथा संस्कार, भक्ति–भावना, मैत्रीभावना इत्यादि नैतिक तथ्य परिलक्षित होते हैं। वेद जिस परमतत्त्व का वर्णन करते हैं वही श्रीमन्नारायण तत्त्व वाल्मीकि रामायण में नर के रूप में निरूपित है। इसलिए वाल्मीकि रामायण की वेदतुल्य प्रतिष्ठा है–

वेदवे़द्ये परे जाते दशरथात्मजे।

वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना।।

आदिकवि ने आदर्श समाज की संरचना के उद्देश्य से श्रीरामचन्द्र को केन्द्र में रखकर एक आदर्श समाज, आदर्श परिवार तथा आदर्श व्यक्तित्व को चित्रित किया है। तपस्वी वाल्मीकि का कथन है कि भगवान् राम धर्म की प्रतिमूर्ति हैं –

रामो विग्रहवान् धर्मः।[1]

सामान्य धर्म व विशेष धर्म – धर्म के ये दो स्वरूप हैं। इनमें सामान्य धर्म वह मानवीय धर्म है जो हमारे विकास का पथ प्रदर्शित करता है। विशेष वे कर्त्तव्य हैं जो श्रेयस्कर गति के साधक हैं। वाल्मीकि के राम इन दोनों धर्मों के योग्यतम प्रतिनिधि हैं। रामायण के प्रारम्भ में ही महर्षि वाल्मीकि श्रीराम के चरित्र को प्रस्तुत करते हुए देवर्षि नारद से एक ऐसे व्यक्ति के विषय में प्रश्न करते हैं, जो गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यव्रती, दृढप्रतिज्ञ, सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हित–साधक, विद्वान्, आत्मज्ञ, क्रोध को जीतने वाला, द्युतिमान्, कभी किसी की निन्दा न करने वाला इन सभी गुणों से युक्त हो –

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।।

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।

विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।।

आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।

कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।।[2]

इस प्रकार पूछने पर महर्षि नारद इन सभी गुणों जो कि एक ही मनुष्य में दुर्लभ हैं– से युक्त विलक्षण चरित्र के रूप में इक्ष्वाकुवंशीय दशरथपुत्र श्री रामचन्द्र को प्रस्तुत करते हैं।

श्री राम का चरित्र ही उन्हें धर्म की प्रतिमूर्ति के रूप में स्थापित करता है। वाल्मीकीय रामायण में जब राम के राज्याभिषेक पर विचार किया जाता है तो राज्याधिकारी व जनपदवासी एक अभिमत होकर सर्वगुणसम्पन्न एवं धर्म के रक्षक राम की इस प्रकार से उद्घोषणा करते हैं–

रामः सत्पुरुषो लोके सत्यः सत्यपरायणः।

साक्षाद् रामाद् विनिर्वृत्तो धर्मश्चापि श्रिया सह।।3

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च शीलवाननसूयकः।

क्षान्तः सान्त्वयिता श्लक्ष्णः कृतज्ञो विजितेन्द्रियः।।[4]

राम को वनवास के रूप में वरदान माँगने वाली कैकेयी भी राम के गुणां को भलीभाँति जानती है। मन्थरा के उकसाने पर भी वह बार–बार राम के गुणों की प्रशंसा ही करती है–

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवान् शुचिः।

रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति।।[5]

सत्य के प्रतिष्ठापक राम की पितृभक्ति तो सर्वसाधारण जन–जन में व्याप्त है। पिता के वचन–पालन हेतु राज्यपद पर अभिषिक्त होने वाले श्रीराम ने चौदह वर्ष के वनवास को प्रसन्न मन से स्वीकार कर लिया। राम के मत में पिता देवताओं से भी बढ़कर है। अतः उनकी आज्ञा का पालन करना अनिवार्य है–

पिता हि दैवतः तात देवतानामपि स्मृतम्।

तस्माद् दैवमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः।।[6]

इसी प्रकार राम का भ्रातृप्रेम भी अनुपम है। राम भरत के समान भाई पूरे संसार में नहीं देखते –

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।

लक्ष्मण के सम्बन्ध में राम कहते हैं –

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।

तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।।[8]

राम का मित्रधर्म अतुलनीय है। मन्त्री– सामन्त, नगरवासी एवं वनवासी, सूत तथा सन्त, महर्षि तथा राक्षस, बन्दर तथा भालू और निषाद तथा पक्षी तक उनके मित्र हैं। मित्रों को हृदय से लगा लेना उनका स्वाभाविक आचरण है। वे गुह को 'भगवान्' शब्द से, सुमन्त्र को 'प्रभो' शब्द से, सुग्रीव को 'आत्मसम' भाव से और विभीषण को धर्मात्मा शब्द से सम्बोधित करते हैं। राम से मित्रता कर लेने के पश्चात् राम उसे कभी नहीं छोड़ते–

'मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।[9]

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के द्वारा अभिमत जीवन वही है, जो धर्म से समन्वित है। पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनैतिक– समस्त व्यवस्था को धर्म से परिचालित करने तथा उस धार्मिक व्यवस्था की परिधि में अभिमत मान्यताओं की रक्षा करने का भी दायित्व राजा का है। महाकवि ने एक प्रजारञ्जक, न्यायप्रिय, कर्त्तव्यपरायण राजा के आदर्श को प्रकाशित करने की अभिलाषा श्री राम के चरित्र के वर्णन द्वारा प्रकाशित की है। मारीच श्री रामचन्द्र की प्रशंसा करते हुए रावण से इस प्रकार कहता है–

न च धर्मगुणैर्हीनः कौसल्यानन्दवर्द्धनः।

न च तीक्ष्णो हि भूतानां सर्वभूतहिते रतः।।[10]

न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान् नाजितेन्द्रियः।

अनृतं न श्रुतं चैव नैव तं वक्तुमर्हसि।[11]

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।[12]

राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः।।

इस प्रकार धर्म के सम्बन्ध में '**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**'[13] तथा 'धर्मो रक्षति रक्षितः' यह उद्घोष वाल्मीकि रामायण में भी भगवान् राम के द्वारा हुआ है–

धर्मार्थं धर्मकांक्षी च वनं वस्तुमिहागतः।[14]

गीता में भी श्रीकृष्ण ने अपने आगमन का कारण यही बताया है कि जब–जब धर्म का नाश होता है तो धर्म की सम्यक् स्थापना हेतु वह प्रकट होते हैं –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।[15]

भगवान् राम का चरित्र धर्म के सम्पूर्ण अंशों से जुड़ा हुआ है। उनके सम्बन्ध में 'रामो विग्रहवान् धर्मः' यह उक्ति सिद्ध होती है। राम के इस पावन एवं धर्ममय चरित्र के कारण ही रामायण की दृश्य अथवा श्रव्य सनातनी परम्परा भारतीय जन–मानस को आह्लादित करती चली आ रही है। महर्षि वाल्मीकि का कथन है– नदियों एवं पर्वतों की भाँति इस भूतल पर राम का चरित्र अक्षुण्ण एवं अमर रहेगा –

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।

तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।[16]

राम के गुण एवं विशेषता के कारण ही संस्कृतसाहित्य में राम के जीवन एवं चरित्र को आधार बनाकर अनेक महाकाव्यों एवं नाटकों का सृजन हुआ है। संस्कृत में ही नहीं बल्कि प्राकृत, पालि, कन्नड़, तमिल, तेलुगु, मलयालम, बांग्ला इत्यादि कई भाषाओं में भी रामचरित का गान किया गया है। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य में भी आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के अनेक कवियों एवं विद्वानों ने राम के चरित को आधार बनाकर अपने ग्रन्थ का प्रणयन किया है। राम का चरित्र मानवीय अभिव्यक्ति की चरम सीमा है। अतः वे साक्षात् धर्मस्वरूप हैं। सीता भी राम को धर्मनिष्ठ एवं सत्यप्रतिज्ञ मानती हैं–

धर्मिष्ठः सत्यसन्धश्च पितुः निर्देशकारकः।

त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।।[17]

इस प्रकार निश्चय ही धर्म की प्रतिमूर्ति राम हैं। सत्य व धर्म राम में ही प्रतिष्ठित हैं। राम ने सदैव धर्मयुक्त आचरण किया है। परिस्थिति उनके अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल, वे धर्म के ही पक्ष में रहे हैं। शत्रु रावण के अन्त्येष्टि कर्म के सम्बन्ध में भी वे विभीषण से कहते हैं –

‘‘मरने तक ही वैर रहता है, हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है। अब यह जैसे तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेरा भी है। तुम इसका दाहादि संस्कार करो’’—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृतं नः प्रयोजनम्।

क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।[18]

सन्दर्भसूची

1. वा0रा0, अरण्यकाण्ड 37 / 13
2. वा0रा0, बालकाण्ड 1 / 24
3. वा0रा0, अयोध्याकाण्ड 2 / 29,
4. वा0रा0, अयोध्याकाण्ड 2 / 31
5. वा0रा0, अयोध्याकाण्ड 8 / 14
6. वा0रा0, अयोध्याकाण्ड 35 / 52
7. वा0रा0, युद्धकाण्ड 18 / 15
8. वा0रा0, युद्धकाण्ड 101 / 15
9. वा0रा0, युद्धकाण्ड 18 / 3
10. वा0रा0, अरण्यकाण्ड 37 / 12
11. वा0रा0, अरण्यकाण्ड 37 / 12
12. वा0रा0, अरण्यकाण्ड 17 / 17
13. मनुस्मृति 2 / 6
14. वा0रा0, अरण्यकाण्ड 17 / 17
15. श्रीमद्भगवद्गीता 4 / 7—8
16. वा0रा0, बालकाण्ड 2 / 36
17. वा0रा0, अरण्यकाण्ड 9 / 7
18. वा0रा0, युद्धकाण्ड 111 / 110

लौटें भी तो कहाँ?

डॉ. चन्द्रकान्ता राय
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृतविभाग

उत्तरांचल की देवभूमि में
पहाड़ों पर चढ़ते
या फिर
उनसे उतरते हुए
देखा है हमने
कलकल करती
कहीं हरहराती
कहीं मन्द–मन्द गहराती
भागीरथी
अलकनन्दा
मन्दाकिनी के
धवल–मटमैले
और फिर तार–तार हो रहे चीर को।
दोनों ओर
ऊँचे–ऊँचे पहाड़ों की तलहटी में
उल्लास बाँटती
मनको बरबस खींच लेती
लहरों ने दिया है
अविरल जीवन–दान
जड़–चतन को
किन्तु–
संसार के समर्थ प्राणी
मनुष्य ने क्या किया?
तृष्णायें बढ़ती गयीं
पाताल से व्योम तक
उड़ान भरने लगीं लालसायें
हमने उजाड़ा ओषधियों–
वनस्पतियों को।
बसुन्धरा की लहराती
सलिलधाराओं को बाँध दिया
पग–पग
पल–पल
खाते गये अमूल्य धन
निसर्ग के सहज उपहार।
सिसकियाँ बन लुप्त होती रहीं अपेक्षायें
नदियों की
हम करते रहे अट्टहास
दौड़ लगाते रहे
पर्वतों के शिखरों
वनों के बीहड़ों
नदियों की लहरों पर
भौतिक विज्ञान के उपकरण ले।

आज सब वीरान हो गया है
हम टूट रहे
थक रहे हैं
भूत के चित्र
कम्प्यूटर और मोबाइल के
दृश्य बन गये हैं
सभी व्यस्त हैं
बाल–युवा–पुरुष–महिलाएँ
धरती को छूते नहीं
आकाश को देखते नहीं
वायु का संस्पर्श नहीं
जल के स्रोत सूख गये
सूरज का ताप
प्रखर होता गया
खड़ा है मनुष्य
कल्पनाओं का
कामनाओं का अम्बार लिए
द्यावापृथिवी के मध्य।
कहीं दल–दल
कहीं ज्वालामुखी
जलते वन
तो कहीं रेगिस्तान
सब कुछ वीरान।
मूर्ख मानव ने तोड़ डाली
प्रकृति और जीवन के
सम्बन्धों की कड़ी।
लौटें भी तो कहाँ?

सनातन धर्म और महामना मालवीय

डॉ0 ममता गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्रविभाग

आधुनिक युग में भारतीय संस्कृति का परम पुजारी, धर्म और राजनीति को यथार्थ रूप से जानने वाला यदि कोई पुरुष हुआ है तो वह महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी हैं जिनके रोम रोम में लोक कल्याण की भावना प्रतिक्षण कार्य करती रही।[1]

महात्मा गाँधी कहते हैं– ''मैं तो मालवीय जी महाराज का पुजारी हूँ। पुजारी कैसे स्तुति के वचन लिख सके? जो कुछ लिखेगा उसे अपूर्ण सा प्रतीत होगा। मालवीय जी के दर्शन मैंने 1890 के साल में चित्र द्वारा किया था। वह चित्र विलायत में इंडिया पत्र जो कि मो0 डिगबी निकालते थे, उसमें था। माना जाय कि वही छवि मैं आज भी देख रहा हूँ जैसे उनके लिबास थे वैसे ही उनके विचार में और इस ऐक्य में मैंने माधुर्य और भक्ति पाये हैं। आज मालवीयजी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है? यौवन काल से आरम्भ करके आज तक उनके देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीयजी का प्राण है, यह नरवीर हमारे लिए दीर्घायु हो।''[2]

1929 (ई0) में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के 12वें दीक्षान्तभाषण में महामना ने कहा –

विश्वविद्यालय में मुख्यतः चार ध्येयों को सामने रखा गया है :

1. हिन्दूशास्त्र तथा संस्कृत भाषा के अध्ययन की वृद्धि जिसके द्वारा भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता में जो कुछ भी श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण था, उसकी तथा हिन्दूओं की प्राचीन संस्कृति तथा भावनाओं की रक्षा जिससे मुख्यतः हिन्दुओं में और सर्वसाधारण में, उसका प्रचार हो सके।
2. कला और विज्ञान की सर्वतोमुखी शिक्षा तथा अन्वेषण की वृद्धि।
3. आवश्यक प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ–साथ विज्ञान, शिल्पादि कलाकौशल तथा व्यवसाय

सम्बन्धी ऐसे ज्ञान की वृद्धि जिससे देशी व्यवसाय रोजगार की उन्नति हो।

4. धर्म और नीति को शिक्षा का आवश्यक या अभिन्न अंग मानकर युवकों में सदाचार का संघटन या चरित्रनिर्माण का विकास करना।

पृथ्वी मण्डल पर जो वस्तु मुझको सबसे अधिक प्यारी है, वह धर्म है और वह धर्म सनातन धर्म है''।

श्री पं0 मदनमोहन जी मालवीय सनातन धर्म के मूर्तरूप थे। वेदों से, धर्म–शास्त्रों से और परम्पराप्राप्त शिष्टाचार से अनुमोदित जो धर्म है, उसे ही सनातन धर्म कहते हैं। सनातन धर्म के दो अंग है– एक दर्शन या अध्यात्म–विचार और दूसरा सदाचार या लोकाचार। संसार के धर्मों में सनातनधर्म एक विलक्षण प्रयोग और उपलब्धि है। संसार का जो उच्चतम तत्त्वज्ञान है और जो महती अध्यात्म–विद्या है और मनुष्य के मन की ध्यान शक्ति से ब्रह्मतत्त्व और सृष्टि के विषय में जो तत्त्व परिज्ञात हुए, उनकी समष्टि सनातनधर्म है। किन्तु मानवीय बुद्धि का प्रकर्ष सनातनधर्म का केवल एक अंग है। उसका दूसरा अंग वह आचार है जो श्रुति, स्मृति, पुराण, आगम, संहिता, तंत्र आदि संस्कृत ग्रन्थों में तथा उन पर आश्रित देशभाषा के अनेक ग्रन्थों में कहा गया है। इन ग्रन्थों में अनुक्त होते हुए भी जो सज्जनों से सेवित जाति–धर्म और कुल–धर्मों के रूप में लोकाचार की तरह परम्परा से चला आता है, वह भी सनातनधर्म को मान्य है। इस प्रकार श्रुतियों में प्रदर्शित और युग–युग के सदाचार से सम्मत जो महान् धर्म है, उसे ही सनातनधर्म कहते हैं। सनातनधर्म ऐसा शरीर है जिसके अभ्यन्तर में एक चेतना या प्राण की सत्ता विद्यमान है। उसमें जहाँ एक ओर बाह्य शरीर का सत्कार पाया जाता है, वहीं दूसरी ओर धर्म की आन्तरिक भावना उससे भी अधिक मूल्यवान् है। सनातनधर्म की यथार्थ परिभाषा और लक्षण बताने में कठिनाई का अनुभव होता है। सनातनधर्म एक प्रकार की मान्यता या आचार तक सीमित नहीं, यह तो अनेक वर्ण, अवान्तर वर्ण, जाति और अन्तर्जातीय वर्ग में स्वेच्छा से परिपालित आचार और विचार की समष्टि है। यह धर्म सबको स्वीकार करते चलता है। सबके साथ सम्प्रीति और समन्वय सनातन धर्म की विशेषता है। यहाँ जैसे किसी मत या आचार का निराकरण है ही नहीं। वृक्ष–पूजा, नाग–पूजा, नदी–पूजा, भूमि–पूजा आदि भौमिक मान्यताओं से लेकर वेदान्तप्रतिपादित औपनिषद् पुरुष या श्रुति प्रतिपादित ब्रह्मतत्त्व तक विचारों और आचारों के अनेक स्तर सनातनधर्म के अंग हैं। इस प्रकार के कोट्यनुकोटि मानवों का जो एक शक्तिशाली राष्ट्र है, उसका धर्म–सनातन धर्म है। महामना मालवीय जी भी सनातन धर्म के इसी विराट् समूह का अभिन्न अंग अपने को मानते

थे। मालवीय जी के अनुसार–

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।

धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति।।

अर्थात् धर्म ही सारे जगत् की प्रतिष्ठा (मूलाधार) है। संसार में प्रजा लोग धर्मशील पुरुष के पास पहुँचते हैं। धर्म से पाप को दूर करते हैं। धर्म में सब प्रतिष्ठित हैं अर्थात् धर्म के मूलाधार पर सब स्थित है इसलिये धर्म को सबसे बड़ा कहते हैं।[3]

विद्या, रूप, धन, शौर्य, वीरता, कुलीनता, आरोग्य, राज्य, स्वर्ग ये सब धर्म से प्राप्त होते हैं। सबसे बड़ा उपकार जो किसी प्राणी का कोई कर सकता है, वह यह है कि उसको धर्म का ज्ञान करा दे, धर्म में उसकी श्रद्धा उत्पन्न कर दे अथवा दृढ़ कर दे। संसार में धर्म के ज्ञान के समान कोई दूसरा दान नहीं है। सनातन धर्म सब मतों के अनुयायियों के उपकार के लिए है। इस सनातन धर्म का उत्तम वर्णन श्रीमद्भागवत के 7वें स्कन्ध के 11 वें अध्याय से लेकर 15वें अध्याय तक पाया जाता है। उसमें लिखा है कि हे राजन्, यह तीस लक्षणवाला धर्म, समस्त मनुष्यमात्र का परम धर्म है जिसके पालन से घट–घट में व्याप्त परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

महाभारत में इस धर्म के मूलतत्त्व का वर्णन है–

एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा।

ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनक्रोधो धृतिः क्षमा।।

सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम्।।[4]

यह धर्म ऐसे हैं कि संसार के सब धर्मों और सब सम्प्रदायों के अनुयायी इनका पालन कर इस लोग में सुख, शान्ति और सुयश तथा परलोक में उत्तम गति पा सकते हैं। भगवान् मनु कहते हैं–**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।** याज्ञवल्क्य ऋषि के मत में वेदांग, स्मृति, पुराण सहित चारों वेद सब विद्याओं और सब धर्म के स्थान हैं। इस बात को पश्चिम के विद्वान् भी मानते हैं।

सनातन धर्म पृथ्वी पर सबसे पुराना और पुनीत धर्म है। यह वेद, स्मृति और पुराण से प्रतिपादित है।संसार के सब धर्मों से यह इस बात में विशिष्ट है कि यह सिखाता है कि इस जगत् का सृजन, पालन और संहार करने वाला आदि सनातन, अज, अविनाशी, सत्–चित्–आनन्द–स्वरूप, पूर्ण प्रकाशमय परब्रह्म परमात्मा है और यह कि यह परमात्मा मनुष्य से लेकर सिंह, हाथी, घोड़े, गौ, हरि आदि सब थैली से उत्पन्न होने वाले जीवों में,

अण्डों से उत्पन्न सब पखेरुओं में, पृथ्वी फोड़कर उगने वाले सब वृक्षों में और पसीने और मैल से उत्पन्न होने वाले सब कीट–पतंगों में समान रूप से विद्यमान है।

यह धर्म बड़े–बड़े गुणों का समूह है। दान, जीवमात्र पर दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, दयालुता, धैर्य, और क्षमा, इन गुणों का योग सनातन धर्म का सनातन मूल है। इन गुणों के कारण भी सनातन धर्म अन्य धर्मों से विशिष्ट है।

सनातनधर्म की दूसरी विशेषता वर्ण और आश्रम का विभाग है जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने श्रीमुख से कहा–**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।**[5] अर्थात् मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार वर्णों को गुण और कर्म के विभाग से रचा है। गुण में जन्म भी अन्तर्भूत है। इसलिए गुण–कर्म के विचार में जन्म, अन्य गुण और कर्म तीनों का समावेश हो जाता है। जैसे विद्या और तप ब्राह्मण की ब्राह्मणता के आवश्यक अंग है तथापि पूर्ण ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए– **विद्या तपश्च योनिश्च त्रयं ब्राह्मणकारणम्**– इसप्रकार विद्या, तप और ब्राह्मण– माता पिता से जन्म, ये तीनों आवश्यक हैं। ब्राह्मणों के छः धर्म हैं– अध्ययन–अध्यापन, यजन–याजन, दान और प्रतिग्रह। इनमें से तीन– अध्ययन, यजन और दान तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों के लिए समान हैं।

वेद पढ़ाना, यज्ञ करना और दान लेना, ये तीन विशेषकर ब्राह्मणों के ही कर्म है। तथापि अवस्थाविशेष में क्षत्रिय और वैश्य भी वेद पढ़ा सकते हैं। सामान्यतया इन तीन विशेष कर्मों के करने का अधिकार उन्हीं ब्राह्मणों को होता है जो न केवल विद्या और तप से युक्त हैं बल्कि जो जन्म से ब्राह्मण हैं।

सामान्य रीति से धर्मग्रन्थों में चारों वर्णों के गुण अलग–अलग वर्णित हैं। महाभारत के शान्तिपर्व, अध्याय 56, में वर्णों के अलग–अलग लक्षण वर्णित हैं। महामना मानते थे कि सनातन धर्म प्राणिमात्र में समता का भाव सिखाता है इसलिए उसकी दृष्टि में मनुष्यों में छोटा और बड़ा का भेद नहीं है। वे कहते हैं कि इस भाव को भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दिया है–''मैं सभी प्राणियों में एक समान हूँ।''[6]

मालवीयजी कहते हैं कि हम सब भाई एक महापिता के पुत्र थे, जैसे पेड़ की चार शाखाएँ हों। अपना–अपना कर्तव्यपालन करते थे। ब्राह्मण धर्मकर्म, वैश्य वैभव–वृद्धि, क्षत्रिय देश–रक्षा और शूद्र कलाकौशल तथा तीन वर्णों की सहायता करते थे, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की तरह चार भाई एक दूसरे से प्रेमभाव रखते, एक दूसरे के सुख दुःख में सम्मिलित

होते रहे हैं। ये भी हमारे सार्वजनिक कामों में साथ देते हैं। तीर्थों में साथ–साथ स्नान करते, त्रिवेणी पर जाते, उत्सवों में भाग लेते, गौरक्षा करते, भगवान् का नाम लेते, चोटी रखते, अपने घर उत्सव मनाते हैं।[7]

श्रीमद्भागवत में भी सातवें स्कन्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अलग–अलग गुणों का वर्णन कर नारद जी ने कहा–

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यज्जकम्।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्।।

अर्थात् जिस पुरुष को जो वर्ण का प्रकट करने वाला लक्षण कहा गया है, जहाँ दूसरे में भी वह लक्षण दिखाई दे, तो उसको उसी गुणवाले वर्ण के नाम से बताना चाहिए।

इन वचनों से स्पष्ट है कि यदि जन्म से ब्राह्मण होने वाला भी अपने धर्म–कर्म से रहित हो जाय या कुकर्म करने लगे, तो वह शूद्र से भी नीचे गिर जाता है और नीच–से–नीच शूद्र भी यदि अच्छे आचारों को ग्रहण करे और ऊँचा, पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे, तो वह भी ब्राह्मण के समान मान पाने के योग्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह प्रसिद्ध है कि भक्ति नीच–से–नीच प्राणी को भी ऊपर उठा देती है और भगवान् का प्रीति–पात्र बना देती है। उस भक्ति की यह महिमा है कि चाण्डाल भी भगवान् का नाम जपने से ब्राह्मण के समान आदर के योग्य हो जाता है। उसी भक्ति का साधन मंत्र–दीक्षा की विधि है, जैसा वैष्णव–तन्त्र में लिखा है–

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसवर्धानतः।

तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्त्वं जायते नृणाम्।।[8]

जैसे काँसे पर रस का प्रयोग करने से वह सोने के समान चमकने लगता है, वैसे ही मंत्र–दीक्षा के लेने से मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त करता है, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान आदर के योग्य हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह शूद्र इस योग्य हो जाता है कि उससे रोटी–बेटी का सम्बन्ध करें या उसको वेद पढ़ाने या यज्ञ कराने को निमन्त्रित करें। इसका यह अर्थ है कि सामान्य शूद्र क्या चाण्डाल में भी यदि विद्या, ज्ञान, शौच, आचार आदि द्विजों के गुण पाए जाएँ तो ज्ञान के क्षेत्र में और सामान्य सामाजिक व्यवहार में द्विज लोग उसकी विद्या, ज्ञान, सदाचार के अनुरूप उसका आदर करें।

श्रीकृष्ण कहते हैं– ''पंडित लोग विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण में, गौ–बैल में, कुत्ते में और चाण्डाल में समदर्शी होते हैं।''[9] उनकी धारणा है कि ऐसे लोग सबके सुख–दुःख को एक जैसा समझते हैं क्योंकि वे समत्व को प्राप्त कर चुके होते हैं। समत्व प्राप्त करने का अर्थ अपने वास्तविक स्वरूप का बोध कर लेना होता है। जब मनुष्य शरीर, इन्द्रिय आदि की विषमता से अपने में विषमता और भेद मानने लगता है तभी अशान्ति, वैमनस्य एवं विग्रह आदि फैलता है। परन्तु जब वह समझ लेता है कि मैं उनसे पृथक् हूँ, तब वास्तविक आत्मस्वरूप जानकर वह सर्वत्र समबुद्धि और प्रेमभावना रखता है। मालवीयजी के शब्दों में, ''यह मनुष्य की व्यक्तिगत आत्मा नहीं है, यह उसकी उच्च महान् आत्मा है, यह विश्वात्मा है।''[10] सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का बोध सभी अनर्थों को मिटा देता है इसलिए कि वही हममें और तुममें है–**''अब हौं कासौ वैर करौं।''**

''मेरा विश्वास है कि सनातन धर्म के तत्त्व को जानने वाले सब विद्वान् ऊपर लिखी व्याख्या को धर्मानुकूल मानेंगे। यदि यह धर्मानुकूल नहीं है तो मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि निष्कल्मष, धर्मज्ञ, धर्मशील विद्वान् हिन्दू–जाति पर और विशेष कर सनातनधर्म के अनुयायियों पर अनुग्रह करके यह बताएँ कि उसमें क्या दोष है। मेरा अभिप्राय यह है कि जो सत्य और धर्म का मार्ग है वही संसार को बताना चाहिए और यदि ऊपर लिखे विचारशास्त्र के अनुकूल है तो उन्हीं के अनुसार अछूतों की आर्थिक दशा सुधारकर सदाचार सिखाकर और उनको मंत्रदीक्षा देकर उनका उद्धार करना हमारा धर्म है। ईसाई, मुसलमान जिन अछूतों को अपने धर्म में मिलाते हैं, उनको अपने समाज में बराबर स्थान देते हैं किन्तु अछूत सनातनधर्मसमाज के अंग हैं। इनकी उन्नति करना, इनको सामान्य और धार्मिक शिक्षा देना और समाज के दूसरे अंगों के समान इनकी रक्षा करना, इनको आगे बढ़ाना हमारा आवश्यक कर्तव्य है। इससे हमारे धर्म की रक्षा और वृद्धि होगी और धर्म को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचेगी। हिन्दू जाति का इसी में भला होगा। ऐसे ही मार्ग के अवलम्बन करने से सनातन धर्म की महिमा पूर्ण रीति से स्थापित होगी। इस प्रकार धर्म–बुद्धि से धर्म के प्रश्नों का निर्णय करने से और उनके अनुसार चलने से समाज में धार्मिक एकता और शक्ति स्थापित होगी।''

सन्दर्भसूची

1. महात्मा जी, मूलपत्र, गाँधी का अभिवादन, मोहनदास गाँधी, विलायत जाते हुए–7.9.31
2. महात्मा जी, मूलपत्र, गाँधी का अभिवादन, मोहनदास गाँधी, विलायत जाते हुए–7.9.31
3. सनातन धर्म साप्ताहिक, वर्ष 2, अंक 1, ता0 17, जुलाई 1934
4. महाभारत, अश्वमेध पर्व, अ0 91, श्लोक 32
5. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4, श्लोक 13
6. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 9, श्लोक 29
7. 'सनातन धर्म' वर्ष 3, अंक 30, पृ0 13, 16 फरवरी सन् 1936 ई0 (अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्म महासभा, प्रयाग में पूज्य मालवीयजी का भाषण)
8. ''सनातन धर्म' (साप्ताहिक), वर्ष 1, अंक 9
9. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 5, श्लोक 18
10. मालवीयजी के लेखः (संपादक, पं0 पद्मकान्त मालवीय), पृ0 205, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962

मेक इन इंडिया मिशन : ई–लाइब्रेरी

रीता श्रीवास्तव
वरिष्ठ पुस्तकालयसहायिका

मेक इंडिया बनी चुनौती संकल्प लेता जनाधार।
ई–लाइब्रेरी करती है सूचना स्रोत का संचार।।
नित नई सूचना से पाठकों को मिलता ज्ञान–भण्डार।
कम लागत, कम समय में तीव्र गति से होता ज्ञानप्रसार।।
विद्वज्जनमानस सामंजस्य करके करते जीवन साकार।
ज्ञान सरिता, सागर बन, नेटवर्क से मिलते दृश्य अपार।।[2]

संचार क्रान्ति की गूँज ने तो बदलाव की गति को और तीव्र कर दिया है। व्यवस्थागत सम्पूर्ण जानकारी एक क्लिक पर उपलब्ध कराने की दिशा में भारत सरकार डिजिटल इंडिया संकल्पना के बुनियादी स्तंभो में से ई–क्रांन्ति सर्वाधिक व्यापक, दूरगामी, और अभिनव विचारों को समाविष्ट करने वाला स्तम्भ है।

मेक इन इंडिया का संदेशवाहक बन भारत अब ई–क्रान्ति का अग्रदूत बनने की राह पर है। इसी संदर्भ में भारत सरकार ने शिक्षाव्यवस्था को पूरी तरह से डिजिटलाइज्ड करने की योजना बनाई है। डिजिटल इंडिया मिशन और ई शिक्षा की सभी सम्भावनाएँ स्मार्टफोन, कम्प्यूटर और इण्टरनेट कनेक्टिविटी पर आश्रित हैं। सूचना प्रौद्योगिकी में आई क्रान्ति, मोबाइल, एप्लीकेशन और इंटरनेट के माध्यम से वीडियो, अक्षर और आवाज, तीनों माध्यमों में शिक्षासामग्री तैयार कर सर्वसाधारण को उपलब्ध कराया जा रहा है। आसानी से समझ आने वाली और कुशल ट्रेनर्स द्वारा तैयार की गई सामग्री को इंटरनेट के माध्यम से दूर दराज में उपलब्ध कराया जा सकेगा इसके लिए 'स्कूलशिक्षा' और साक्षरता विभाग ने मुक्त शिक्षासंसाधन के राष्ट्रीय भंडारण का कार्य शुरू कर दिया है जिसे नेशनलरिपोजिटरी ऑफ ओपन एडुकेशन रिसोर्सेज– एन आर ओ ई आर कहा गया है। यह पहल "राष्ट्रीय

ई–लाइब्रेरी" का एक हिस्सा बनती जा रही है। यहाँ शिक्षा सामग्री जैसे नक्शे, वीडियो, मल्टीमीडिया ओडियो, क्लिप, ऑडियो बुक्स तस्वीरें, लेख, विकी के पृष्ठ और चार्ट आदि उपलब्ध कराए जा रहे हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधानों, अन्वेषणों, साधनों, माध्यमों ने सर्वतोमुखी विकास का पथ प्रशस्त कर दिया है। अब भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक राजनैतिक आदि सभी दूरियाँ सिमट गई हैं। आज पूरी दुनिया ने एक विश्वगाँव (Global village) का रूप ले लिया है।

इलेक्ट्रानिक क्रान्ति और संचारमाध्यमों से विश्व का जनसमुदाय चामत्कारिक रूप से एक सूत्र में बँध गया है। इसके तहत आसानी से ये काम हो रहे हैं–

(1) पुस्तकालयों को वाई–फाई से जोड़ा जा रहा है।

(2) पुस्तकालयों में डिजिटल लॉकर के अर्न्तगत दस्तावेजों को ऑन लाइन सहेजा सकेगा जिससे सत्यापन और अन्य जाँच संबंधी परेशानियों से बचा जा सके।

(3) 'ई पाठशाला' नाम के एप्लीकेशन की मदद से छात्रों, अभिभावकों और शिक्षकों के लिए शिक्षासामग्री को ऑन लाइन उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके अलावा बड़े पैमाने पर ऑनलाइन ओपन पाठ्यक्रम (एम0ओ0ओ0सी0–मौखिक ऑन लाइन ओपन कोर्सेज), ई पाठशाला नाम एप्लीकेशन, शालासिद्धि, पुस्तकालय की किताबों को डिजिटल स्वरूप में बदलकर जनसुलभ बनाया जा रहा है ताकि शिक्षा सस्ती और सुलभ हो सके।

भारत सरकार द्वारा अन्य ऐसे नवीन प्रयासों को डिजिटल इंडिया की वेबसाइट पर www.digitalindia.gov.in के साथ–साथ www.mhrd, gov.in/e contents पर देखा जा सकता है।

पुस्तकालय का अर्थ बालकों, वयस्कों को ऐसा अवसर उपलब्ध कराना है जिससे कि वे अपने को सम–सामायिक जानकारी से संपन्न रख सकें, अनवरत रूप से स्वयं शिक्षा प्राप्त कर सकें और अपने समय के विज्ञान तथा कला की प्रगति से अवगत होते रहें। ज्ञान और संस्कृति के विकास से पुस्तकों में जिनका जीवंत प्रदर्शन होता है, उनको नवीकृत कर उन्हें आकर्षक स्वरूप में व्यवस्थित कर उसे उपलब्ध कराना इसका इष्ट होना चाहिए। पुस्तकालय का संबंध सूचनाओं और विचारों के प्रसार (में मदद करने) से है, चाहे वे जिस रूप में उपलब्ध हों।"

इस प्रकार 21वीं सदी की शुरुआत से पूर्व ही सूचना संचार क्रान्ति अपनी पराकाष्ठा की सीमा को पार करने लगी है। परिणामस्वरूप विश्वजनमाध्यमों में अभूतपूर्व, आमूलचूल

परिवर्तन आया है और उसके स्वरूप एवं प्रभावात्मकता के दायरे में अनोखे ढंग से वृद्धि हुई है। इलेक्ट्रानिक, विस्तार, कम्प्यूटरीकरण एवं संचारक्रान्ति ने एक साथ मिलकर ऐसे सूचना–महामार्ग (Information Super High way) का निर्माण किया है चाहे वह पेपर हो, प्रिटिंग प्रेस हो, ब्लैक बोर्ड हो, पुस्तकें हों, इक्कीसवीं सदी के इण्टरनेट सुविधा वाले पुस्तकालय जिनमें टेलीग्राफ, टेलीप्रिन्टर, टेलेक्स, फैक्स या फैक्सीमाइल, टेलीफोन क्रान्ति (एस0टी0डी0, आई0एस0डी0, कार्डलेस फोन्स, सेलुलर फोन्स, वीडियो या फोटोफोन) श्रव्य, दृश्य साधन, इत्यादि हों। तकनीकी विशेषज्ञ इसे कम्प्यूटर नेटवर्क की दुनिया कहते हैं। बावजूद इसके साइबर स्पेस की दुनिया व्यापक होती जा रही है। सूचना की दृष्टि से जो जितना सम्पन्न है उसकी ही तूती बोलती है।

संचार मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता– मौलिक जरूरत है। यह आवश्यकता ई–लाइबेरी से पूर्ण होगी क्योंकि पुस्तकालय ही वह स्थान है जहाँ नागरिकों को सही समय पर सही सूचना एक ही स्थान पर मिल जाती है।

इन सभी मानकों की पूर्ति पुस्तकालयों ही से सम्भव है। संग्रहण का अपार भण्डारण तथा आधुनिक सूचना संसाधनों का उपयोग, भारत सरकार सामान्य सूचना संजाल जनरल इन फारमेशन नेटवर्क, राष्ट्रीय सूचना केन्द्र संजाल (NICNET), इण्डोनेट (INDONET), विशेष सूचना संजाल (स्पेशल इन्फारमेशन नेटवर्क), CALIBNET, कलकत्ता लाइबेरी नेटवर्क, DELNET, दिल्ली लाइबेरी नेटवर्क, INFLINET, इन्फारमेशन लाइबेरी नेटवर्क, MALIBNET, मद्रास लाइबेरी नेटवर्क, शिक्षा एवं शोधसंजाल (ERNET), CSIRNET, DESINET, VIDYANET, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक शोध संजाल (CSIRNET) विशेषीकृत संजाल (Specialized NETwork sail NET, RAILNET) इत्यादि सभी सूचना–संचारसंसाधनों के माध्यम से भारतीय संचारजगत् लगातार उत्तरोत्तर विकास एवं प्रगति की दिशा में अग्रसर है तथा मेकइन इण्डिया की चुनौतियों को आत्मसात् करने के लिए ई–लाइब्रेरी निरन्तर अग्रसर है। संक्षेप में–

विश्वस्तर पर सदैव हमारा देश रहा महान्

सूचना संचार क्रान्ति से हो रहा निरन्तर नित नव उत्थान।

Make in India मिशन से होगा सभी चुनौतियों का समाधान

ई– लाइब्रेरी के माध्यम से ही होगा नया विहान।।

नारी

विकास कुमार उपाध्याय
शोधच्छात्र, संस्कृतविभाग

या वन्दनीया जननीस्वरूपे
याऽह्लादनीया रमणीस्वरूपे।
या श्लाघनीयास्ति बुधैः सदैव।
प्रताड्यते साऽद्य तथापि नारी ।।1।।

त्यक्त्वा पितुर्या हि गृहं प्रयाति
विना विचारेण गृहं च भर्तुः।
नाहं विजानामि कथं प्रमूढैः।
प्रताड्यते साऽद्य तथापि नारी ।।2।।

न यां विना वंशसमुन्नतिर्हि
न लभ्यते किञ्च सुखं नरेण।
गृहं तु शून्यं सततं जनानां
प्रताड्यते साऽद्य तथापि नारी ।।3।।

लब्ध्वाऽपि सर्वोच्चपदं स्वराष्ट्रे
न रक्षिता या ह्यभवत्समाजे।
सर्वेषु कार्येषु परं प्रवीणा
प्रताड्यते साऽद्य तथापि नारी ।।4।।

पाश्चात्त्यसंस्कारभृताऽपि लोके
न विस्मृतः कोऽपि यया स्वधर्मः।
लब्धा पुरा या पदवीं तु देव्याः
प्रताड्यते साऽद्य तथापि नारी ।।5।।

भारतीय दर्शनों में प्रतिपादित त्रैगुण्य-विवेचन

प्रियंका
शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग

सभी भारतीय दर्शनों ने त्रैगुण्य (सत्त्व, रज एवं तम) को स्वीकार किया है। वेदान्त में प्रतिपादित माया अथवा अविद्या (अज्ञान) तथा सांख्य में प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा गया है। सभी दर्शनों में समस्त जगत् को त्रिगुण का परिणाम स्वीकार किया गया है। वेदान्त के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि का कारण अज्ञान त्रिगुणात्मक है– 'अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चित्' ।[1]

सांख्य पच्चीस तत्त्वों को मानता है–

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।

षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।।[2]

इसमें वर्णित मूलप्रकृति अर्थात् प्रधान एवं इसकी कारणभूत व्यक्त त्रिगुणात्मिका है। सुख, दुःख, मोह ये तीनों गुण जिनमें विद्यमान हों, उन्हें 'त्रिगुण' कहते हैं। इसके विपरीत गीता में प्रकृति के तीन गुण सत्त्व, रज एवं तम को बताया गया है प्रकृति गुणस्वरूप नहीं है तथा इसके अतिरिक्त पृथिव्यप्तेज आदि के भेद से प्रकृति को आठ प्रकार का कहा गया है– **प्रकृतेर्गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि**[3] **भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा**[4] **सर्वं प्रकतिजैर्गुणैः।**[5]

इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् में प्रकृति को त्रिगुणात्मिका एवं समस्त जगत् का कर्तृरूप प्रतिपादित किया है–

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।[6]

इस प्रकार प्रकृति के स्वरूप का विचार करने पर सर्वत्र गुणों का अभिधान प्राप्त होता

है। किन्तु कहीं पर प्रकृति को त्रिगुणात्मिका, कहीं त्रिगुण की साम्यावस्था कहा गया है, तो कहीं त्रिगुण को प्रकृति का रूप कहा गया है। सांख्यसूत्र में प्रकृति के स्वरूप का स्पष्टतः उल्लेख किया गया है– **सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।**[7] सांख्यकारिका में त्रिगुण के स्वरूप का उल्लेख है–

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।

अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः।।[8]

अर्थात् सत्त्वगुण प्रीत्यात्मक (सुखस्वरूप) है एवं इसका कार्य प्रकाश करना है। रजोगुण अप्रीत्यात्मक (दुःखस्वरूप) है, इसका कार्य प्रवृत्ति (किसी कार्य में प्रवृत्त करना) कराना है। रजोगुण विषादात्मक है, इसका प्रयोजन नियमन करना है, यह किसी कार्य में प्रवृत्ति को रोकता है तथा स्थिरता प्रदान करता है। चार्वाक के अनुसार प्रीति दुःखाभाव के अतिरिक्त कुछ नहीं है अर्थात् चार्वाक दुःख के अभाव को प्रीति मानते हैं एवं प्रीति के अभाव को दुःख मानते हैं। किन्तु सांख्य सुखादि को इतरेतर का अभाव नहीं मानता है। अपितु तीनों को एक साथ भावरूप में विद्यमान मानता है। सुख, दुःख, मोह के कारण ही 'अहं सुखी', 'अहं दुःखी' इत्यादि अनुभवात्मक प्रतीति होती है। रजोगुण प्रवृत्ति का कारण है। सत्त्वगुण एवं तमोगुण रजोगुण के बिना निष्क्रिय अवस्था में रहते हैं। ये दोनों रजोगुण से युक्त होने पर ही अपने–अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। सत्त्वगुण रजोगुण से युक्त होकर सात्त्विक प्रकाशमय कार्य करता है। तमोगुण की अधिकता सात्त्विक गुणों के कार्यों को नियमित करती है। जब वस्तु स्थिर होती है तो उसमें तमस् प्रधान होता है। जब वह वस्तु क्रिया का सम्पादन करती है तो उसमें रजोगुण की प्रधानता होती है, सत्त्व और तमस् गौण हो जाते हैं। वही वस्तु जब प्रकाशवाली हो जाती है तो उसमें सत्त्व प्रधान हो जाता है, रजस् और तमस् गौण हो जाते हैं। इस प्रकार सभी वस्तुओं में तीनों गुण सदैव रहते हैं। पुरुष से अतिरिक्त जो कुछ भी है वह त्रिगुणात्मक है। सम्पूर्ण जगत् ही तीनों गुणों की विकृति है। तीनों गुणों के स्वरूप का उल्लेख ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में किया गया है–

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।

गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।।[9]

सांख्याचार्यों ने सत्त्व को लघु (हल्का) अर्थात् मन को प्रसन्न रखने वाला माना है। यह प्रकाशक अर्थात् सदसद् वस्तुओं का प्रकाशन करके ज्ञान में प्रवृत्ति कराता है। सत्त्वगुण लघु होने के कारण वस्तु के ऊर्ध्वगमन में हेतु है। अग्नि के लघुत्व के कारण ही उसकी ज्वालाओं में ऊर्ध्वगमन होता है एवं वायु के लघु होने के कारण उसमें तिर्यग्गमन होता है।

सत्त्वगुण एवं तमोगुण क्रियाहीन होने के कारण क्रमशः अपने–अपने कार्यप्रकाशन एवं नियमन को करने में असमर्थ होते हैं। रजोगुण क्रियाशील है। अतः रजोगुण इनके अवसाद को दूर करके इन्हें अपने–अपने कार्यों में प्रवृत्तिशील बनाता है। रजोगुण के क्रियाशील होने के कारण यह प्रवृत्तिशील है। इसलिये इसको उपष्टम्भक अर्थात् उत्तेजक कहा गया है अर्थात् सत्त्व एवं तम को अपने–अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिये उत्तेजना प्रदान करता है। ईश्वरकृष्ण ने 'गुरु वरणकमेव तमः' इस कारिकांश के द्वारा तम में नियामकत्व अथवा अवरोधकत्व का उपपादन किया है। तीनों गुणों के कार्य परस्पर विरोधी हैं, किन्तु त्रिगुण अपने व्यापार द्वारा प्रदीप के समान कार्यों की सिद्धि करते हैं। यथा दीपक में बत्ती, तेल और अग्नि तीनों परस्पर विरोधी हैं, इनमें से किसी भी एक का वैषम्य होने पर दीपक का प्रकाशरूप कार्य नष्ट हो जायेगा, किन्तु अग्नि के साथ मिलकर बत्ती एवं तेल घटपटादि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं।

गुण जब साम्यावस्था में रहते हैं तब उनका प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं होता है, किन्तु जब वे वैषम्यावस्था में होते हैं, कार्य के रूप में परिणत होते हैं तभी वे कार्यों के माध्यम से दृष्टिपथ में आते हैं। यथा–

गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति।

यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायैव सुतुच्छकम्।।[10]

सांख्य में इसका विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। सांख्य में इसे एक विशेष अभिधान 'परिणाम' प्राप्त है। गुण परिणामशील हैं। परिणाम सांख्य का परिभाषिक शब्द है। परिणाम का शब्दिक अर्थ है– अपने पहले वाले धर्म को छोड़कर किसी दूसरे धर्म को ग्रहण करना। परिणाम दो प्रकार का होता है– एक साम्य अर्थात् सरूप परिणाम, जैसे– दूध में दूध के निर्विकार बने रहने की अवस्था में होता है। दूसरा विषम अर्थात् विरूप परिणाम होता है, जैसे– दूध में एक निश्चित समय के पश्चात् खटास आदि विकार आने पर होता है। तीनों गुणों का सामान्य परिणाम ही अनुमानगम्य अव्यक्त अर्थात् प्रधान मूलप्रकृति अथवा केवल प्रकृति है।

अव्यक्त अर्थात् प्रकृति की प्रवृत्ति भी दो प्रकार से होती है— एक प्रलयकालीन एवं दूसरी सृष्टिकालीन। प्रलयकाल में तीनों गुण पृथक्—पृथक् अपने स्वरूप से विद्यमान होते हैं। सृष्टिकालीन अवस्था में तीनों गुण (सत्त्व, रज, तम) गौण, प्रधानभाव से आपस में सम्मिलित होकर किसी भी कार्य के उत्पादन में प्रवृत्त होते हैं जैसे कूर्मशरीर में विद्यमान उसके अंग, हस्त पादादि जब बाहर होते हैं तब विभक्त होते हैं। विभागकाल में 'यह कूर्मशरीर है' इस प्रकार की प्रतीति होती है और ये इसके हस्त, पादादि अंग हैं, इस प्रकार पृथक्—पृथक् रूप से प्रतीत होते हैं किन्तु जब ये अंग कूर्मशरीर में तिरोहित हो जाते हैं, तब वे अव्यक्तावस्था को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार पंचमहाभूत, तन्मात्रायें, अहंकार, महदादि प्रलयकाल में अपने—अपने कारण में लीन हो जाते हैं एवं अन्ततः ये सभी प्रकृति में लीन हो जाते हैं तथा सृष्टिकाल में पुनः इनका अपने—अपने कार्य रूप में आविर्भाव होता है।

गुणों का प्रथम विषम परिणाम महत्त्व होता है। प्रकृति का चेतनतत्त्व से संयोग होने पर सत्त्व, रज और तम में प्रथम विषम परिणाम होता है जिससे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। महत्तत्व में चेतनतत्त्व के ज्ञान के प्रकाश को ग्रहण करने की योग्यता है, जिसमें कर्तृत्व अहंकार बीजरूप से विद्यमान रहता है। महत्तत्त्व के ज्ञानस्वरूप चेतनतत्त्व से प्रकाशित होने का गीता में अतिसुन्दर शब्दों में वर्णन किया गया है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते स चराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।[11]

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।

तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।।[12]

अर्थात् हे अर्जुन! सब योनियों में जो शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी योनि महत्तत्व है और उनमें बीज को डालने वाला मैं चेतनतत्त्व पिता हूँ।

ऋग्वेद में इसी तथ्य को स्पष्ट किया गया है—

हिरण्यगर्भः समर्वताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।।[13]

प्रकृति एवं चेतनतत्त्व के सम्बन्ध को तीन प्रकार से बतलाया गया है— 1. जैसे वायु भुवनों में व्यापक है इसी प्रकार चेतनतत्त्व महत्तत्व में व्यापक हो रहा है। यथा—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।[14]

जिस प्रकार एक वायुतत्त्व सारे भुवनों में प्रविष्ट होकर रूप–रूप में प्रतिरूप हो रहा है, इसी प्रकार एक आत्मा, जो सबका अन्तरात्मा है, रूप–रूप में प्रतिरूप हो रहा है और अपने शुद्ध चेतनस्वरूप से बाहर भी है।

जैसे सूर्य जलाशयों में प्रतिबम्बित हो रहा है, इसी प्रकार ज्ञानस्वरूप चेतनतत्त्व महत्तत्त्व में प्रतिबिम्बित हो रहा है। यथा–

एक एव तु भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।।[15]

एक ही भूतात्मा भूत–भूत में विराजमान है। जिस प्रकार एक ही चन्द्रमा जल में अनेक होकर दीखता है, इसी प्रकार एक ही आत्मा अनेक रूप में (समष्टिविशुद्ध सत्त्वमय चित्त में एकत्वभाव से और व्यष्टिसत्त्वचित्तों में बहुत्वभाव से प्रतिरूप हो रहा है। यथा–

निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्तते।

सत्तामात्रेण देवेन तथा चायं जगज्जनः।।[16]

जैसे बिना इच्छावाले चुम्बक के स्थित रहने मात्र से लोहा प्रवृत्त होता है, वैसे ही सत्तामात्र देव (परमात्मा) से जगत् की उत्पत्ति आदि होती है। आभ्यन्तर दृष्टि रखने वाले तत्त्ववेत्ताओं के लिये ये तीनों उद्धरण समानार्थक हैं। चेतनतत्त्व के महत्तत्त्व में प्रतिबिम्बित होने और बीजरूप से छिपे हुए विशुद्ध सत्त्वमय चित्त में समष्टि अहंकार के और सत्त्वचित्तों में व्यष्टि अहंकार के क्षोभ पाकर अहंभाव से प्रकट होने को उपनिषदों में अनेक प्रकार से वर्णित किया गया है। यथा– **सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।**

अर्थात् उस ब्रह्म ने कामना की कि मैं बहुत प्रजाओं वाला हो जाऊँ उसने तप किया। तप के द्वारा इस संसार में दृश्यमान जो कुछ भी है उसकी रचना की। इनकी रचना करके वह इनमें प्रविष्ट हो गया।

महतत्त्व का परिणाम अहंकार– पुरुषसे प्रतिबिम्बित महत्तत्व ही सत्त्व में रजस् और तमस्

की अधिकता से विकृत होकर अहंकाररूप से व्यक्तभाव में प्रतीत होता है। अहंकार से ही पुरुष में कर्तृत्व का भाव उत्पन्न होता है। यथा– **'अहंकारः कर्त्ता न पुरुषः'**[17] अर्थात् कर्त्तृत्व गुण अहंकार में होता है, पुरुष में नहीं। अहंकार से ही अहंभाव (अभिमानोऽहंकारः), अहंभाव से एकत्व, बहुत्व, व्यष्टि, समष्टिरूप सर्वप्रकार की भिन्नता उत्पन्न होती है।

अहंकार का परिणाम एकादशेन्द्रिय एवं पञ्च तन्त्रमात्रायें हैं। अहंकार से दो प्रकार की सृष्टि होती है। सात्त्विक अहंकार से सात्त्विक एकादशेन्द्रिय अर्थात् पञ्च ज्ञानेन्द्रियों, पञ्चकमेन्द्रियों एवं मन की उत्पत्ति होती है। तामस अहंकार से पंचतन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) की उत्पत्ति होती है। क्योंकि पञ्चतन्त्रमाओं में तमस् गुण की प्रधानता पायी जाती है, इसलिये इसे तामसिक अहंकार का कार्य माना जाता है–

सात्त्विक एकादशः प्रवर्त्तते वैकृतादहङ्कारात्।

भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्।।[18]

पञ्चतन्मात्राओं का परिणाम पञ्चमहाभूत– शब्द, स्पर्श, रूप, रसादि, पञ्चतन्त्रमात्रायें सूक्ष्म हैं। इन पञ्च तन्मात्राओं से आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी आदि पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। इन पञ्चमहाभूतों को स्थूलभूत भी कहा जाता है क्योंकि ये शान्त अर्थात् सुखात्मक, घोर अर्थात् दुःखात्मक, एवं मूढ़ अर्थात् मोहात्मक तीनों रूपों में विद्यमान रहते हैं–

तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानि पञ्च पञ्चभ्यः।

एते स्मृता विशेषाः शान्ता घोराश्च मूढाश्च।।[19]

इस प्रकार महत्तत्त्व की अपेक्षा अहंकार में, अहंकार की अपेक्षा पाँचों तन्मात्राओं में और ग्यारह इन्द्रियों में एवं तन्मात्राओं की अपेक्षा स्थूलभूतों में क्रमशः रज तथा तम की मात्रा बढ़ती जाती है तथा सत्त्व की मात्रा कम होती जाती है। यहाँ तक कि स्थूल जगत् और स्थूल शरीर में रज तथा तम का ही व्यवहार चल रहा है। सत्त्व केवल प्रकाशमात्र ही रह रहा है। अतः उपनिषदों में पुरुष का निवासस्थान चित्त में जिसका विशेष स्थान अङ्गुष्ठमात्र हृदय है, बतलाया गया है एवं सांख्य तथा योग द्वारा उसकी प्राप्ति का उपाय स्थूलभूत, तन्मात्राओं अहंकार और महत्तत्त्व से क्रमशः अन्तर्मुख होते हुए स्वरूपावस्थित होना बतलाया है।

इसी प्रकार तत्त्वसमास के अष्टौ विकृतयः षोडशविकाराः, पुरुषः, त्रैगुण्यम्– ये चार

सूत्र सांख्य की चतुःसूत्री हैं, जिनका कपिलमुनि ने सारे ज्ञेय पदार्थों के जिज्ञासु आसुरि को समाधि अवस्था में अनुभव करके उपदेश किया है।

सन्दर्भसूची

1. वेदान्तसार
2. सांख्यकारिका, कारिका 3
3. श्रीमद्भगवद्गीता 3.27
4. श्रीमद्भगवद्गीता 7.4
5. भगवद्गीता 3.5
6. श्वेताश्वतरोपनिषद् 4.5
7. सांख्यसूत्र 1.61
8. सांख्यकारिका 12
9. सांख्यकारिका 13
10. वार्षगण्याचार्य–षष्टितन्त्र
11. श्रीमद्भगवद्गीता 9.10
12. श्रीमद्भगवद्गीता 14.3
13. ऋग्वेद
14. कठोपनिषद् 2/5/10
15. बह्मबिन्दु
16. सांख्यप्रवचनभाष्य 1/97
17. सांख्यसूत्र 6/54
18. सांख्यकारिका 25
19. सांख्यकारिका 38

प्राचीन भारतीय शिक्षापद्धति में पाठ्यक्रम

जगदीशलाल
शोधच्छात्र, इतिहासविभाग

''प्रत्येक राष्ट्र की एक आत्मा होती है।''[1] दीनदयाल जी इसे शास्त्रीय भाषा में चित्ति कहते हैं।[2] राष्ट्र की संस्कृति, दर्शन एवं स्वभाव इसी चित्ति की अभिव्यक्ति होता है। यह राष्ट्र का विशिष्ट दर्शन ही राष्ट्र के व्यक्तियों में समान लक्ष्यों एवं आदर्शों का निर्माण करता है तथा राष्ट्र के आदर्श को प्राप्त करने की प्रेरणा देता है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, ''इंग्लैण्ड की आत्मा साम्राज्य है, अमेरिका की आत्मा वैभव, जापान की आत्मा तकनीकी है, लेकिन भारत की आत्मा ज्ञान है।''[3] इसी तथ्य को व्याख्यायित करते हुए दीनदयाल जी कहते हैं– ''हमारे देश के इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि हमारे यहाँ सम्राटों या लक्ष्मीपुत्रों की तुलना में ऋषि–मुनियों को अधिक महत्त्व दिया गया है। बड़े–बड़े राजा भी इन महर्षियों के सामने नतमस्तक होते थे। हमारे राष्ट्र की मूल प्रकृति अध्यात्मप्रधान रही है।[4] राष्ट्र के मूल तत्त्व के आविर्भाव से ही राष्ट्र का उदय होता है।

राष्ट्र के जीवनदर्शन पर आधारित प्रत्येक राष्ट्र का विशिष्ट शिक्षादर्शन होता है। यही कारण है कि दार्शनिक अवधारणाओंसम्बन्धी विविधताओं के चलते राष्ट्रों की शिक्षा की अवधारणा तथा शैक्षिक समस्याओं में अन्तर पाया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा–आयोग के प्रतिवेदन 1971 में इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा गया कि ''प्रत्येक देश की शिक्षाव्यवस्था, वहाँ की राष्ट्रीय चेतना, संस्कृति एवं परम्पराओं की सर्वोच्च अभिव्यक्ति होती है, क्योंकि कोई एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के समान नहीं होता। अतः शिक्षा की व्याख्या उतनी ही मिलती है जितने कि विश्व में देश हैं।

भारत ने अपनी विशिष्ट शिक्षापद्धति के कारण ही सहस्रों वर्षों तक न केवल विश्व का सांस्कृतिक नेतृत्व किया, अपितु उद्योग–धन्धों, कला–कौशल एवं ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी रहा। प्राचीन भारत में ऋषियों ने गणित, विज्ञान की नींव रखी। भारतीय ऋषियों ने पदार्थ की रचना का विश्लेषण किया और आत्मतत्त्व का साक्षात्कार किया। उन्होंने तर्क, व्याकरण, खगोलशास्त्र, दर्शन, तत्त्वज्ञान, औषधि–विज्ञान, शरीररचनाविज्ञान जैसी विविध विषयों में महती प्रगति की एवं अपने नैतिक गुणों में भी सर्वोच्च आयाम को छुआ।

शिक्षा केवल पढ़ने–लिखने या सूचनाओं को स्मरण रखने की प्रक्रिया मात्र नहीं है, अपितु शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास की आधारशिला है। इस प्रकार शिक्षा मानवजीवन के परिष्कार एवं विकास की प्रणाली है। मानव के जीवन के प्रत्येक अनुभव, जिससे मनुष्य सीखता है, शिक्षा है। शिक्षाशास्त्र में मनुष्य के संतुलित एवं सम्पूर्ण विकास को शिक्षा का लक्ष्य माना गया है। शिक्षा मनुष्य के आंतरिक शक्तियों, शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का सर्वांगीण विकास है।

भारतीय शिक्षापद्धति अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर एवं मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने वाली है। शिक्षा व्यष्टि, समष्टि एवं परमेष्टि की सम्प्राप्ति के लिए क्रियाशील बनाती है। शिक्षा आत्मज्ञान के साथ–साथ जागतिक ज्ञान की ओर प्रेरित करती है। सत्यं वद धर्मंचर की आध्यात्मिक परिकल्पना से परिपूर्ण मानव जीवन को समृद्ध करना शिक्षा का उद्देश्य है। ऐसी शिक्षा से जीवन में मुक्ति प्राप्त होती है तथा मनुष्य शिल्प में निपुण होता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा को आदर्शवादी शिक्षादर्शन माना जाता है, किन्तु आदर्शवाद के सिद्धान्त का वह स्वरूप, जो पाश्चात्त्य जगत् में प्रचलित हुआ, भारतीय आदर्शवाद का सिद्धान्त उससे पूर्णतः भिन्न है। भारतीय शिक्षापद्धति में छात्र को विशेष पद्धति के अनुसार शिक्षा देना ही पर्याप्त नहीं समझा जाता है, बल्कि संस्कारों के माध्यम से जीवन के गठन की सम्पूर्ण व्यवस्था निहित होती है।

प्राचीन भारत में शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं प्रबंधन से प्राचीन शिक्षाव्यवस्था की पूरी रूपरेखा का विश्लेषण किया जा सकता है। पाठ्यक्रम का शिक्षा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। पाठ्यक्रम के द्वारा ही पता चलता है कि तत्कालीन समाज का शैक्षिक स्तर क्या था? विद्यार्थी का व्यक्तित्व पाठ्यक्रम के आधार पर ही निर्मित होता है। भारत की प्राचीन शिक्षापद्धति धर्म–आधारित थी। स्वाभाविक रूप से शैक्षिक पाठ्यक्रम में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान था। किसी भी देश में उसके संविधान का जो स्थान होता है, शिक्षाजगत् में वह स्थान पाठ्यक्रम का है। भारत में शिक्षा–व्यवसाय का विकास वैज्ञानिक रूप से हुआ। शिक्षा के विभिन्न विषय प्राचीन शिक्षाविदों ने निर्धारित किए थे। उन विभागों को विभिन्न विषयों में विभक्त किया गया था। प्राचीन शिक्षापद्धति के तुल्य ही प्राचीन समय की शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा के विषयों को निर्धारित करके उनके विभाग निर्धारित किए गये थे।

रामायण एवं महाभारत में अनेक आश्रमों का वर्णन है, जहाँ शिक्षा के विभिन्न विषयों के अध्यापन का प्रबंध था। यहाँ योग्य आचार्य छात्रों को विद्या का अध्ययन कराते थे। उनकी कृर्ति को सुनकर दूर–दूर के छात्र विद्याध्ययन के लिए आते थे। इन आश्रमों को गुरुकुल का

नाम दिया गया था। यहाँ का सर्वोच्च अधिकारी कुलपति कहलाता था। उसके अधीन एवं निरीक्षण में रहते हुए विभिन्न विभागों के विभागाध्यक्ष तथा विषयविशेषज्ञ छात्रों को समुचित शिक्षा देते थे। आधुनिक परिभाषा में इन विभागों या संकाय का फैकल्टी कहा जा सकता है। राधाकुमुद मुकर्जी ने इन कार्यों की गणना इस प्रकार की है –

1. **अग्निस्थान**– अग्नि स्थान एक प्रकार की यज्ञशाला थी, जहाँ सामूहिक रूप से यज्ञी अग्नि की उपासना की जाती थी।
2. **ब्रह्मस्थान**– यह वैदिक साहित्य के अध्ययन का स्थान था, जहाँ वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों, उपनिषदों और वेदांग का अध्ययन होता था।
3. **विष्णुस्थान**– यहाँ व्यावहारिक विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। विद्याएँ तीन थीं– दण्डनीति (राजनीति शास्त्र), अर्थनीति और वार्ता (कृषि, गौरक्षा, वाणिज्य और उद्योग)।
4. **महेन्द्रस्थान**– इस विभाग में सैन्य शिक्षा का प्रबंध था। यहाँ विविध प्रकार के आयुधों तथा सेनाओं के संचालन की शिक्षा दी जाती थी।
5. **विवस्वतस्थान**– यह ज्योतिषविद्या का केन्द्र था। इसके अंतर्गत नक्षत्रज्योतिष, फलितज्योतिष, गणितज्योतिष आदि विषयों का अध्ययन होता था।
6. **सोमस्थान**– यहाँ वनस्पतिविज्ञान का अध्ययन होता था। इसमें उद्यान, वन, औषधि आदि से संबंधित विषय पढ़ाये जाते थे।
7. **गरुड़स्थान**– यहाँ वाहनों तथा परिवहन से संबंधित विषयों की शिक्षा का प्रबंध था। प्राचीन भारत में विविध प्रकार के वाहनों का प्रचार था यथा विमान, नौका, रथ, विविध प्रकार की बैलगाड़ियाँ, गज एवम् अश्व आदि। परिवहन के लिए सड़कें, पुलों, बाँधों आदि का निर्माण करना होता था तथा गरुडस्थान में इन सब विद्याओं के अध्यापन एवम् कार्यात्मक प्रशिक्षण का प्रबंध था।
8. **कार्तिकेयस्थान**– सैनिक संगठन से सम्बन्धित विषयों की शिक्षा का यहाँ प्रबन्ध था। सेना के विभिन्न संगठन किस प्रकार बनाये जाएँ? शत्रु पर आक्रमण प्रतिरक्षा आदि की शिक्षा दी जाती थी।

चाणक्य के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम–

आचार्य चाणक्य ने शिक्षा को चार भागों में विभाजित किया है–

1. **आन्वीक्षिकी**– चाणक्य ने इसके अंतर्गत सांख्य, योग और लोकायत की गणना की है। आन्वीक्षिकी विद्या लोक का कल्याण करती है। यह आपत्तिकाल और उन्नतिकाल में बुद्धि को स्थिर करती है। यह मनुष्य को बुद्धि से विचार करने योग्य, बोलने और

कार्य करने योग्य बनाती है। यह सभी विद्याओं का दीपक है तथा कार्यों का उपाय है तथा सभी धर्मों का आश्रय है।

2. **त्रयी**— इस विद्या से धर्म का ज्ञान होता है। इस विद्या के अंतर्गत तीन वेद— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद आते हैं। इसके अन्तर्गत शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द आदि की गणना की जाती है।
3. **वार्ता**— इसके अन्तर्गत अर्थोपार्जनसंबंधी विद्याओं की गणना की जाती है। ये तीन हैं— कृषि, पशुपालन और वाणिज्य। इस विद्या के द्वारा लोक में धान्य, स्वर्ण, पशु, खनिज पदार्थ आदि प्राप्त होते हैं। वार्ता द्वारा प्राप्त सामग्री से तथा कोष और दण्ड से राजा अपने पक्ष को तथा शत्रु के पक्ष को भी अपने वश में करता है।
4. **दण्डनीति**— आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता— इन सबका संचालन दण्ड पर निर्भर है। दण्ड के कार्य हैं— अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त करना, रक्षा की गई वस्तुओं की वृद्धि करना और संबंधित वस्तुओं को समुचित कार्यों में लगाना।

प्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक धर्मपाल जी ने निम्नलिखित स्रोतों के आधार पर प्राचीन भारतीय शिक्षाव्यवस्था, जो कि अंग्रेजों के काफी समय बाद तक प्रचलित रही, में पाठ्य विषयों को स्पष्ट किया है—

1. 1813 से 1833 तक ब्रिटेन संसद हाउस ऑफ कॉमर्स में चली बहस।
2. 1834 से 1838 तक बंगाल और कुछ जिलों में प्रचलित भारतीय शिक्षा व्यवस्था के बारे में विलियम एडम के लिए गए सर्वेक्षण।
3. 1820—30 के वर्षों में मुम्बई प्रान्त के ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा किए गए सर्वेक्षण के वार्षिक विवरण।
4. मद्रास प्रान्त में भारतीय शिक्षा के बारे में 1822—25 में किए गए सर्वेक्षण के प्रकाशित विवरण।
5. जी डब्लू लिटनर द्वारा इसी विषय पर पंजाब प्रांत में सम्पन्न सर्वेक्षण के विवरण।

पाठशाला में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों की सूची—

1. सभी पाठशालाओं में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकें—

   1. रामायण, 2. महाभारत, 3. भागवत।
2. कारीगरवर्ग के छात्रों के लिए उपयोग में ली जाने वाली पुस्तकें—

   1. नागलिंगायन कथा,

   2. विश्वकर्मा पुराण,

   3. कमलेश्वर कालिकामहत्ता

3. लिंगायत छात्रों के उपयोग में ली जाने वाली पुस्तकें–

1. भवपुराण 2. राघव कथा 3. गिरिजाकल्याण
4. अनुभवमूर्त 5. चित्रबसवेश्वर पुराण 6. गुरिलगुल्लु

4. वाचनसामग्री–

1. पंचतंत्र 2. वैताल पंचविंशति

5. शब्द कोश एवं व्याकरण की पुस्तकें–

1. निघंटु 2. अमरकोश 3. शब्दमुनिदर्पण
4. शब्दमंजरी 5. व्याकरण 6. आन्ध्रदीपक

इसी प्रकार उच्च शिक्षा में वेद, उपनिषद्, व्याकरण के महान् ग्रंथ वाक्यपदीय, सिद्धान्त कौमुदी आदि का विवरण प्राप्त होता है।

वैदिक साहित्य की रचना के अनंतर संस्कृति और विज्ञान के साथ–साथ अध्ययन के विषयों का विस्तार होता गया। धार्मिक शिक्षा के साथ कला, विज्ञान और शिल्प के तकनीकी ज्ञान में वृद्धि हुई। विद्यालयों में अनेक लौकिक विषयों के अध्यापन का प्रबंध होने लगा। 64 कलाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था हुई। इनमें ललित कलाएँ प्रमुख थीं। मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यगीत और वाद्य का विशिष्ट स्थान था। नारदस्मृति में शिक्षकों के प्रशिक्षण की विशेष पद्धति का वर्णन है।

आज हमारे सामने यह बड़ा प्रश्न खड़ा है कि हमारा देश कहाँ भटक गया है और क्यों भटक गया है? इसका समाधान हमें खोजना पड़ेगा। प्राचीन काल में बड़े–बड़े ऋषि–महात्मा राज्यकर्ताओं का उचित मार्गदर्शन करते थे तथा हमारे ऋषियों को अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों दिखाई पड़ता था जिसके आधार पर वे सही मार्गदर्शन देने में समर्थ थे। इसे सिद्धपरंपरा कहते थे। आज इस ऋषिपरंपरा का लोप हो गया है। भारत में पराधीनता के काल में इस परंपरा का लोप हुआ तथा अंग्रेजों ने अत्यंत चतुराई के साथ सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में राज्यसत्ता का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक संस्कार सभी के निर्धारण का दायित्व राज्यसत्ता के हाथों में आ गया। हमारे विद्वान् एवं प्रबुद्ध वर्ग की भूमिका पूरी तरह से नकार दी गई, जिसे पुनःस्थापित करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भसूची

1. संस्कृति, अंक–14, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 1973, पृष्ठ–39
2. पं0 दीन दयाल उपाध्याय, राष्ट्र जीवन की दिशा, लोक हित प्रकाशन लखनऊ, पृष्ठ संख्या–43

3. संस्कृति, अंक–14, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 1973, पृष्ठ–40
4. पं0 दीन दयाल उपाध्याय, राष्ट्र जीवन की दिशा, लोक हित प्रकाशन लखनऊ, पृष्ठ संख्या–59
5. लज्जा राम तोमर, भारतीय शिक्षा के मूल तत्त्व, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ–24
6. 'Learning To be- The Report of the International Commission on the development of Education, 1971
7. लज्जा राम तोमर, भारतीय शिक्षा के मूल तत्त्व, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ–7
8. डॉ0 चन्द्र प्रकाश सिंह, द जर्नल ऑफ इण्डियन थॉट एण्ड पॉलिसी रिसर्च–2012, अंक–1
9. ऊँ असतो मा सद्गमय।। तमसो मा ज्योतिर्गमय।। मृत्योर्मामृतम् गमय।। बृहदारण्यक उपनिषद् (1.3.27)
10. तैत्तिरीय उपनिषद्, शिक्षावल्ली, अनुवाक–11, मंत्र–1
11. विष्णुपुराण 1 / 10 / 41, सा विद्या या विमुक्ते विद्यान्या सिद्धनैपुण्यम्।
12. मुकर्जी राधाकुमुद, एंशिएंट इण्डियन एजूकेशन, पृ0 333
13. अर्थशास्त्र, 1.1.2, आन्वीक्षिकी वार्ता दंड नीतिश्चेति विद्याः।
14. प्रो0 आर0पी0पाठक, प्राचीन भारत में शिक्षा का पाठ्यक्रम एवं प्रबंधन, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृष्ठ संख्या–49
15 धर्मपाल समग्र– रमणीय वृक्ष, पुनरुत्थान ट्रस्ट अहमदाबाद, पृष्ठ–33–34
16 अशोक सिंहल, एकात्म दृष्टि भारत का भविष्य, अरुंधति वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, पृ0–42

PROBLEM OF WEAVERS IN HANDLOOM INDUSTRY
(Study based on weavers of Varanasi, Uttar Pradesh)

Vishwadeep Tripathi
Research Scholar, Department of Sociology

Abstract -

The Handloom industry is a traditional industry in India which provides a lot of joy to the people, who have no any other means of livelihood. This study is based on traditional handloom weavers' problem in Varanasi district of Uttar Pradesh. Now the number of traditional handloom weavers is decreasing and new generation is not showing its interest in this traditional profession, since it is offering a little wages. In the weaving industry Power Loom products are giving challenge for traditional weavers.

The main problem of handloom weavers is power loom competition, little wages, increasing price of yarn, market for ready product, illiteracy among them, unawareness about government schemes ets.

<u>Intro-duction -</u>

Handloom-weaving is one of the largest economic activity after agriculture providing direct and indirect employment to about 40 lakh weavers and allied workers. This sector contributes nearly 15% of the cloth production in the country and also contributes to the export earning of the country. 95% percent of the world's hand woven fabric comes from India. The declining trend in production in the handloom sector has more or less been arrested through number of weavers engaged in handloom sector.

Handloom sector is sustained by transferring skill from one generation to another. The strength of the sector lies in its uniqueness, flexibility of production, openness to innovation adaptability to the supplier and requirement and the wealth of

its tradition. Adoption of modern technique and economic liberalization however has had a serious impact on the handloom sector. Availability of cheaper imported fabric, changing consumer preferences and alternative employment opportunities have threatened the vibrancy of the handloom sector. Due to various policy initiatives and scheme interventions like cluster approach, aggressive marketing initiative and social welfare measures the handloom sector has shown a positive growth. Handloom sector is a major traditional industry in Varanasi, Uttar Pradesh. A large number of weavers are doing this occupation since thousand of years. This industry is facing many problems today inspite of a glorious past and huge potential for employment generation as well as contribution to the GDP of the state and the Nation.

This industry helps to create apple opportunity of employment especially for the labour class. By export of handloom product, nation earns a lot of foreign currency. Thus this sector is strengthening the nation's economy. The handloom industry has developed a lot period of time. It is spread throughout to the country. A very large number of looms were located even in rural part of Varanasi, Uttar Pradesh. Both men and women were involved in the handloom weaving. It was their way of life that majority of handloom weavers followed hereditary live for weaving skill. Now the weaving industry is facing a lot problems due to powerloom competitions, rising price of yarn, low wages and unavailability of market for ready product. Government of India is also providing free electricity to powerloom weavers. We can see a big gap in the price of powerloom and handloom made product. So people prefere to buy a cheap cost cloth which might be looking same to the handloom product. A handloom weaver prepare a Sari in six days but powerloom can prepares too high quality Sari in one day on a low cast.

Objective to Study and Methodology :

In the view of the crucial significance of ensuring the sustainability of the handloom industry, various number of issues and challenges need to be studied. Accordingly this study seek to (a) study the significance of handloom industry in India, (b) make a detailed study of the major problem and challenges in handloom industry in Varanasi, Uttar Pradesh and (c) suggest suitable remedial strategies and policy option for the healthy growth of the handloom sector in Varanasi, Uttar

Pradesh.

This study is descriptive in nature and bassed on the primary and secondary data. The study is also exploratory as it is of ongoing nature and without presuming any ready made solution in hand for thanticipated issues and challenges. The handloom co-operatives are a major segment accounting for a large proportion of weavers next to the master weaver segment.

Study area- Varanasi is city in the northern Indian state of Uttar Pradesh dating to the 11th century B.C. regarded as the spiritual capital of India which is located on the bank of the holy river Ganga. We can see nearly 2000 temples, includ Kashi Vishwanath. Weaving industry is a main occupation of Varanasi. There are 90 wards in Varanasi nagar nigam. Mainly minority class weavers are now remaining in handloom weaving sector. When we take a look upon the history of weaving in Varanasi, Chhittan Baba is known as founder of Varanasi weaving industry. This study is based on nagar nigam area of Varanasi and Lallapura, Madanpura and Kachchi Badhu ward are accepted for research study.

In Varanasi four type of weavers are found such as independent weaver. The contact weavers, the loomless weavers, the contract weavers and the co-operative weavers. The co-operative weavers are the member of the government registered organisation which is intervened through the cooperative institutions. The contact weavers and loom weavers also work under the system. The contract weavers work on contract basis means. They get raw material and other things from the Gaddidar or master weavers in term of getting wages. Wages are determined on the basis of complexity of the design and bargaining capacity of the weavers. They use loom of their own but are employed as a wage earner to otherloom or master weavers factory premises.

Another kind of loomless weavers is found in Varanasi, i.e. those weavers who have given a loom by master weaver of Gaddidar installed at their home and loomless weavers take raw material from the master weaver or Gaddidar on the credit and after preparing product they sell it to the gaddidar and get their wages. In Varanasi handloom weaving system is known as Bani systerm. The independent or self employed weavers are not under the bani system.

Have a look on the Bani System Stratum :

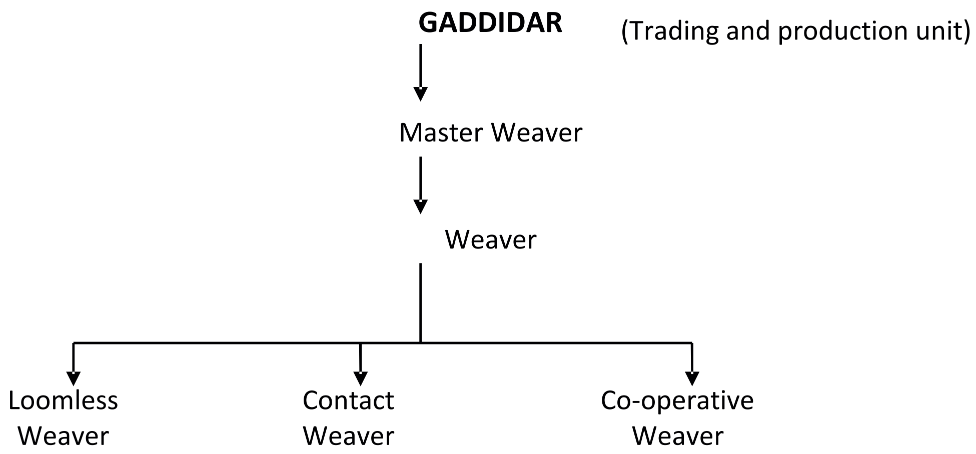

The main reason for declining of handloom industry and weavers :

There are many reasons for declining the handloom industry in India,for example - competition with powerloom is the main factor of decline of weavers. Powerloom product are too cheap but handloom product are more expensive (wastas) to buyer because handloom products are made from silk yarn but powerloom products for example powerloom Sari starts from 300 Rs. but handloom Sari starts from 2000 Rs. A handloom weaver prepares a Sari in about 4-5 days and gets 300 to 500 Rs. on the other hand a powerloom weaver can prepare two saries in a day and gets 300 to 600 Rs. in a day. Product of powerloom is cheaper because they use substandered raw material like mixed silk, synthetic, bright, kichhi, polestar, rolex and plastic. Near about 80% of weavers population is working on powerloom, 10% are running on handloom and 10% are migrated to another state for better livelyhood.

A handloom weaver earns 1800 to 3000 Rs. per month and powerloom weaver earns minimum 10000 Rs. per monthd. Government of India and state also provide powerloom weaver electic concession on bill. Only 80 Rs. per month bill is paid by weaver on operating a powerloom. They use electric as home electric supply whether it is given only for powerloom.

A handloom made Banarasi Sari starts. From 5000 Rs. Qn the other hand

powerloom made Banarasi Sari starts from 1200 Rs. The gap between the two is giving the challenge to handloom.

- Wages is also a problem for handloom weaver. A sari which is sold on a price of 5000 Rs. made by weavers. Weaver gets only 600-700 Rs. for preparing in 6 to 7 days. Master weaver and Gaddidar look like a crusher for handloom weaver. After a 12 hour hardwork on handloom a weaver could not buy a day meal for his family. Weavers of Varanasi are dixing because of it thousands of weavers had left this occupation and doing some other work like grocershop, e-Rickshaw driving auto driving or left to another state for better income.
- Handloom weaving production system is known as Bani system. Bani is the way by which Gaddidar and master weaver (GiRastan) exercise to control over the weavers. A Gaddidar or Girastan provides yarn to weavers on the condition that all the product would be sold to him and they will get their wages. Gaddidar gets money from two ways, first he sold yarn on any rate and prepared product rate also fixed by him and between these two, dying warping weft, denting etc. are completed by weavers. In this way we can see the process of exploitation by Gaddidar. Mainly due to Gaddidar and master weaver because weaver can not go ahead without crossing them. They have full control over market. After preparing a product on independent weaver have to go to Gaddidar for selling his product and Gaddidar fixed the rate as he wants.
- A big problem looks when prepared product demand is too low. Weaver have to sell the product of any rate because they have no money to run their families. Handloom product rate and demand is going down, so weavers cannot get profit. They work only for the survival in Varanasi. We can see that the weavers are dieing but Gaddidars and traders are happy because they never weave. They get profit by two ways from weavers. All the profit goes to the master weaver or Gaddidar.

But due to mismanagement and corruption, co-operative have failed to fulfill their objectives. Benefits of it have not reached to poor weavers of Varanasi. The Gaddidar use co-operative institutions for their business. Master weavers and

their dummy members, try to seize the benefits.

- Weavers have no new design and new order from weaving handloom industry of handloom running on its lowest stage. So the hands are unemployed. Earlier we could see that women and children were helping in earning but, now women are sitting in houses and suffering from disease.
- Unwareness of market trends, lac of marketing information to weavers by the Government and illiteracy of the weavers are the responsible factor. Weaver are still weaving Dhoti and Sari, Gamchha. They are not producing cloth according to the changing fashions and consumer preferences. So their demand is getting low.

The weavers are facing financial problem and they can not pay the electric bills. Govt. of India gave electric bill concession to powerloom but not for handloom weavers. Now many weavers have to sell their houses to pay the electric bills.

Conclusion-

The government of India and Government of Uttar Pradesh have started many schemes to support the handloom weavers like Mahatma Gandhi Bunkar Bima Yojan, comprehensive, handloom cluster development scheme, E-commerce, Hastkala Samvardhan Yojana, Comprehensive handloom development scheme, Revival, Reform and Restructuring package, Yarn supply scheme, health insurance scheme, central assistance for implementation of the handloom (Reservation of the Article for production) act 1985, India Handloom Brand, many workshops, training programs, marketing and export promoting schemes, diversified handloom development schemes, Bunker pension Yojana, Common facility centre, Pradhanmantri Mudra Yojana etc. National Handloomday is being celebrated on 7th August every year but all the support and schemes for handloom industry does not look effective because offer all, the weavers are leaving this traditional occupation.

Reference :

- Annual Report Ministry of Textiles GO 1, 2017-18 teramin.nic.in - Document - annual-report.
- Annual Report 2015-16 Ministry of Textiles www.texmin.nic.in>annual-

report 2015.

- Annual Report Ministry of Textiles GO 1, texmin.nic.in > Document > annual-report-2011-12, 2012-13, 2013-14, 2014-15, 2015-16, 2016-17.
- Shaw Tanusree- A study of the present situation of the traditional Handloom Weavers of Varanasi. available online at. www.isca.in page 48.49, 50-51.
- Handloom sector in India : A Literature Review of Government Report - www.aarf.asia.page 418, 422, 423, 437 PVS Vyshnavi SS Nair.
- Handloom Industry in Keral : A study of the problem and challenge Anu Varghese and Dr. M.H. Salim.
- International Journal of Management and social science Research Review Vol. I, Issue 14 Aug. 2015. Page 347, 348, 349, 350, 351.
- The Handloom (Reservation and Articles for production) Act. 1985.
- Handloom Census of India 2009-10.
- Handloom schemes office of Development Commissioner (Handloom).
- www.indiahandloombrend.gov.in

षोडश संस्कारों की सामाजिक उपयोगिता एवं महत्त्व

दीप्ति पाण्डेय
एम.ए.पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

संस्कार का सामान्य अर्थ शुद्धि अथवा स्वच्छता से है। संस्कार शब्द में सम् उपसर्ग, कृ धातु और घञ् प्रत्यय है (पंचविंशतिका), जिसका अर्थ शुद्धता या परिष्कार है। अंग्रेजी में इसके लिए सेक्रामेंट शब्द है जिसका तात्पर्य धार्मिक विधान होता है। अन्य अर्थों के रूप में मीमांसा में इसका अर्थ विधिवत् शुद्धि से है। अद्वैतवेदान्त में यह आत्मव्यंजक शक्ति को व्यक्त करता है। हमारा जीवन संस्कारों से ही परिशुद्ध होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि संस्कार व्यक्ति के शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक एवं धार्मिक परिष्कार के निमित्त वह धार्मिक क्रिया है जो विशुद्ध पवित्र अनुष्ठान में आस्था रखती है। इनको सम्पन्न करके व्यक्ति समाज का अंग बनकर स्वयं का आध्यात्मिक विकास करता है।

संस्कारों के प्रमुख लक्षण

1) पवित्रता का सन्निवेश
2) मन का परिष्करण
3) धर्मार्थ का आचरण
4) क्रियागत विधान
5) समाज से जुड़ाव

साधारणतया जातक के जन्म से मृत्युपर्यन्त सम्पूर्ण जीवन विभिन्न संस्कारों से पवित्रता के साथ शुद्ध होता रहा है। संस्कारों के अन्तर्गत देवताओं की स्तुति, प्रार्थना और उनके निमित्त यज्ञ किया जाता है। इनसे मानव की अप्रत्यक्ष बाधाओं को दूर कर उसका भावी जीवन निर्विघ्न किया जाता है। मानव–जीवन को विविध सांसारिक कष्टों से मुक्त करने व मंगलमय जीवन के निर्माणार्थ ही संस्कारों का विधान किया गया है।

सामान्यतया संस्कारों का प्रचलन वैदिक युग से ही है। सूत्रों और स्मृतियों में इनका विस्तार से वर्णन प्राप्य है।

संस्कारों के मुख्य तीन प्रयोजन हैं–

गुणाधान, मलापनयन, हीनांगपूर्ति

गुणाधान— जैसे घड़े (कुम्भ) का निर्माण करने पर उसमें रंग इत्यादि से गुणों का सन्निवेश किया जाता है जिससे उसके सौन्दर्य और उपयोगिता दोनों की वृद्धि होती है।

मलापनयन— निर्मल करना, दोषों को हटाना, जैसे खदान से हीरा इत्यादि रत्न प्राप्त होने पर उस पर लगी हुई मलिनता इत्यादि को साफ करके उसे वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठापित करना है।

हीनांगपूर्ति— किसी अंग इत्यादि की क्षति या न्यूनता की पूर्ति करना एवं इसी पूर्ति हेतु विवाह संस्कार का समायोजन किया जाता है।

संस्कारों का विभाजन—

(1) **जन्म से पूर्व के संस्कार**—
गर्भाधान, पुंसवन व सीमन्तोन्नयन।

(2) **बाल्यावस्था के संस्कार**—
जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूणाकर्म, कर्णवेध।

(3) **शैक्षिक संस्कार**—
विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त एवं समावर्तन।

(4) **गृहस्थाश्रम संस्कार**—
विवाह।

(5) **मृत्यु के पश्चात् होने वाला संस्कार**—
अन्त्येष्टि संस्कार।

गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात्पुरा।
पष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तो मास्येते जातकर्म च।। (याज्ञ स्मृ0 1/10)

गर्भाधान— इसे निषेक भी कहते हैं। इस संस्कार के माध्यम से पुरुष स्त्री में अपना बीज स्थापित करता हुआ सन्तान की कामना करता है। इसे सम्पन्न करते समय उपयुक्त समय एवं वातावरण का विशेष ध्यान रखा जाता है। स्त्री का गर्भधारण के लिए ऋतुस्नान से निवृत्त होकर चौथी से सोलहवीं रात्रि का समय उपयुक्त माना गया है। दिन के समय गर्भाधान वर्जित है।

पुंसवन— संतानोत्पत्ति के निमित्त यह संस्कार गर्भधारण से तीसरे माह में सम्पन्न किया जाता है। जब चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में हो उस समय रात्रिकाल में बरगद की छाल का रस स्त्री की नाक में दाहिने छिद्र में डाला जाता है, ताकि गर्भपात से बचाया जा सके।

सीमन्तोन्नयन— इस संस्कार का समायोजन गर्भधारण के चौथे माह में किया जाता है। इसमें गर्भिणी के सीमन्त अर्थात् बालों व केशों को उन्नयन अर्थात् ऊपर उठाया जाता है ऐसा विश्वास है कि जब स्त्री गर्भवती होती है तब उस पर अनेक विघ्न—बाधायें आती हैं। उन्हीं

बाधाओं के निवारणार्थ यह किया जाता है।

जातकर्म— इस संस्कार के माध्यम से नवजात शिशु के ऊपर आने वाले समस्त विघ्नों के नाश हेतु वैदिक मन्त्रों का उच्चारण विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा किया जाता है। इसी संस्कार में बालक की जिह्वा पर सोने की शलाका से शहद से ऊँ लिखने का भी विधान किया जाता है।

नामकरण— साधारण नियम है कि **यथा नामो तथा गुणः।** बालक अपने नाम के अनुरूप ही जीवन के कार्यों में प्रवृत्त भी होता है। इसलिए नामकरण करते हुए विशेष ध्यान रखना चाहिए। मनुस्मृति में भगवान् मनु ने स्वयं कहा है कि ब्राह्मण को अपने बालकों का नाम शुभदायक एवं कोमल गुणों से युक्त, क्षत्रियों को अपने नवजातों का नाम वंशपरम्परा से युक्त बलशाली, वैश्यों को इसी क्रम में धनाढ्य, संभ्रान्त, गौ—सुर—विप्रसेवकों के तुल्य नाम कहे हैं तथा शूद्र व्यक्तियों को अपने जीवन में समाज हितकारी के साथ—साथ कर्मनिष्ठ नाम रखने चाहिए।

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति।

(पा0गृ0सू0 1/17/5/6)

निष्क्रमण— इस संस्कार के माध्यम से नवजात शिशु को प्रथम बार घर से बाहर निकाला जाता है। यह संस्कार जन्म के चौथे माह में सम्पन्न किया जाता है। एक निश्चित मांगलिक तिथि को पूजन—पाठ के अनन्तर सन्तान को प्राकृतिक वातावरण में लाया जाता है। शिशु को माँ की गोद में देकर सूर्य दर्शन कराया जाता है।

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्, घृतौदनं तेजस्कं दधि मधुमिश्रितमन्नं प्राशयेत्।

(पा0गृ.सू0 1/19/13

अन्नप्राशन— पाँचवें महीने के अनन्तर शिशु अन्न खाने के लायक बन जाता है। इस अवसर पर शिशु को प्रथम बार अन्न ग्रहण कराया जाता है। इस संस्कार को संपादित करते समय दूध, दही, शहद, घी और भात का बच्चे के मुख से स्पर्श कराया जाता है।

चूड़ाकरण— शिशु के सर्वप्रथम बाल काटने का आयोजन चूड़ाकर्म संस्कार के अन्तर्गत होता है। इसमें शिखा को छोड़कर सिर के सभी बाल कटवा दिये जाते हैं। मनु महाराज के वचनानुसार सभी बालकों का यह संस्कार पहले व तीसरे वर्ष में करा देना चाहिए।

कर्णवेध— यह संस्कार वैदिक व्यवस्था के अनुरूप है क्योंकि अथर्ववेद में इसका उल्लेख भी मिलता है। इस अवसर पर सुई की नोक से कान को छेदकर उसमें स्वर्ण—कुण्डल या चाँदी की बाली पहनायी जाती है। बालक को दीर्घायु बनाने हेतु इस संस्कार को संपादित करवाया जाता है।

विद्यारम्भ— पाँच वर्ष की उम्र वाले शिशु को शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है, इस संस्कार में बालक वर्णाक्षरों का ज्ञान प्राप्त करता है। शुभ मुहूर्त में शिक्षक द्वारा पट्टी पर

स्वस्तिक और ऊँ के साथ वर्णमाला लिखकर बालक को अक्षरारम्भ कराया जाता है।

उपनयन– सनातनपरम्परा में विशेष रूप से हिन्दू समाज में उपनयन संस्कार का विशेष महत्त्व प्राचीन काल से ही देखा जाता रहा है। इसी संस्कार को पूर्ण करने के बाद मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त करता है। यह संस्कार एक प्रकार से इस बात का प्रमाण है कि अनियमित व अनुत्तरदायी जीवन समाप्त होकर नियमित एवं उत्तरदायी गंभीर और अनुशासित जीवन का प्रारम्भ हुआ। शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से इस संस्कार की महदुपयोगिता है। त्रिवर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय वं वैश्य) को इसी संस्कार के बाद अपने वर्ण की सदस्यता प्राप्त होती है।

वेदारम्भ– गुरु के सान्निध्य में जाकर शिष्य का वेदाध्ययन आरम्भ करना भी एक संस्कार माना जाता है। प्राचीन काल में वेदों का अध्ययन करना शिक्षा का मुख्य अंग था। इस संस्कार को करने का उत्तम काल तभी माना जाता है जब विद्यार्थी यथार्थ में वैदिक स्वाध्याय प्रारम्भ करता है।

केशान्त – यह विद्यार्थी के सोलहवें वर्ष में सम्पन्न करना चाहिए। इस समय उसकी दाढ़ी आदि का प्रथम बार क्षौरकर्म किया जाता है। मनुमहाराज के अनुसार त्रिवर्णों का क्रमशः 16, 22, 24वें वर्ष में केशान्त सम्पन्न करवाना चाहिए।

समावर्तन – यह शिक्षा समाप्त होने के बाद होने वाला संस्कार है। ब्रह्मचर्याश्रम शिक्षा ग्रहण करने की अवधि है जिसके बाद समावर्तन या स्नान संस्कार किया जाता है। समावर्तन का शाब्दिक अर्थ है गुरुकुल से शिक्षा ग्रहण करने के बाद घर की ओर लौटना। इस अवसर पर स्नातक आचार्य का आशीर्वाद प्राप्त करके घर लौटकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है।

विवाह– समस्त संस्कारों में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मानव इससे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। विवाह संस्कार के अन्तर्गत वर–वधू की योग्यतायें, गोत्र, वर्णादि का विचार किया जाता है। इसका प्रधान उद्‌देश्य वंशवृद्धि है।

अन्त्येष्टि– मरणोपरान्त किया जाने वाला संस्कार अन्त्येष्टि के नाम से विख्यात है। यह मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है। इसके द्वारा मृत प्राणी के लिये परलोक में शान्तिलाभ की भावना व्यक्त की गयी है। दाहक्रिया से पूर्व कुछ धार्मिक क्रियाएँ की जाती हैं।

मत्स्यपुराण में मरणोपरान्त तीन प्रकार की अन्त्येष्टिक्रिया का वर्णन है–

(1) शव को जलाना।

(2) जमीन में गाड़ना।

(3) जल प्रवाहादि।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव जीवन संस्कारों का ही दूसरा रूप है। ये सभी संस्कार वर्ण, धर्म और आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत माने गये हैं। संस्कार मनुष्य के जीवन में क्रमिक विकास का व्यवस्थित, अनुशासित और समग्र रूप हैं। संस्कार भारतीय संस्कृति की अमूल्य देन हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक का वैशिष्ट्य

चन्दा प्रजापति
एम0ए0 पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

महाकवि कालिदास संस्कृत वाङ्मय के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनकी तुलना अंग्रेजी के सर्वश्रेष्ठ कवि शेक्सपियर से की जाती है। उनके वैदुष्य की प्रशंसा करते हुए संस्कृत के अनेक महाकवियों ने कहा है–

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते।।

महाकवि कालिदास को 'काव्य' और 'नाट्य' दोनों में ही ख्याति प्राप्त हुई है। इन्होंने मेघदूतम, ऋतुसंहारम, कुमारसम्भव, रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तल, 'मालविकाग्निमित्र तथा विक्रमोर्वशीय की रचना' की है।

महाकवि कालिदास की सभी रचनाओं में 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक श्रेष्ठ है। इसमें कुल सात अंक है, सातो अंकों में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' के चतुर्थ अंक को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि यह अंक सम्पूर्ण नाटक का केन्द्रबिन्दु है, इसलिए कहा भी गया है–

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि चतुर्थो अंकः तत्र श्लोकचतुष्टयम्।।

नाटक दृश्य एवं श्रव्य दोनों में होता है, इसमें नेत्र एवं श्रोत्र दोनों आनन्दित तथा आप्लावित होते हैं। इसके अतिरिक्त नाटक में विभिन्न स्वभाव वाले मनुष्यों का एक साथ ही मनोरंजन होता है। अतः काव्यों में नाटक अधिक रमणीय होता है, नाटकों में भी शाकुन्तल नाटक और उसमें भी उसका चतुर्थ अंक श्रेष्ठ है क्योंकि शकुन्तला के पतिगृहगमन के अवसर पर मानव तथा प्रकृति सभी सहानुभूति से भर जाते हैं। स्नेह, सद्भावना एवं आत्मीयता की अभिव्यक्ति इस अंक की सबसे बड़ी विशेषता है, प्रेम और सौन्दर्य का सरस, हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी चित्रण जैसा अभिज्ञानशाकुन्तल में हुआ है, अन्यत्र दुर्लभ है।

शाकुन्तल के चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई का प्रसंग तो विश्व साहित्य में

अद्वितीय है, पुत्री की विदाई के समय सभी आश्रमवासी, पशु–पक्षी मृग, मयूर आदि भावविह्वल हैं और पुत्री के लिए अपनी हार्दिक शुभकामना प्रकट करते हैं –

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 4/6)

अभिज्ञानशाकुन्तल के समस्त श्लोकों में चतुर्थ अंक के श्लोक महाकवि कालिदास को अमर देते हैं। वे अपने भाव, कल्पना–वैभव, पाण्डित्य, वैदुष्य, कवित्वशक्ति, अर्थोदात्तता के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। 'यास्यत्यद्य' में वात्सल्यपूर्ण हृदय से युक्त एक वनवासी ऋषि धर्मपिता को अपनी कन्या की विदाई के अवसर पर होने वाली जिस अनुभूति का चित्रण महाकवि कालिदास ने अपनी अमर लेखनी से किया है, वह काव्य के क्षेत्र में अत्यन्त ही दुर्लभ है। इसी श्लोक से पिता का अपनी पुत्री के प्रति प्रेम प्रकट होता है –

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 4/18)

इस श्लोक में भारतीय संस्कृति के अनुकूल एक आदर्श पिता अपनी पुत्री की विदाई की बेला पर अपनी आश्रमपालिता, पितृप्रेमलालिता, पुत्री को भोग–विलास, शासन सम्बन्धी कूटनीति की शिक्षा न देकर व्यावहारिक एवं शुद्ध शिष्टाचार की शिक्षा दे रहे हैं। त्यागमयी वृत्ति की शिक्षा देना तपोनिष्ठ महर्षि पिता के लिए सर्वथा शोभनीय है –

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः
त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 4/17)

इस श्लोक में कण्व ऋषि अपने सन्देश के माध्यम से दुष्यन्त का ध्यान तपस्वियों की साधना, स्वयं के उच्चकुल, साथ ही शकुन्तला के निर्व्याज प्रेम की ओर भी आकृष्ट करते हैं, कुलीन पिता अपनी पुत्री के सम्मानित जीवन की माँग करता है, उससे महर्षि कण्व की विपुल उदारता एवं पिता की पुत्री के प्रति कल्याण–भावना विदित होती है –

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 4 / 9)

इस श्लोक में करुणभाव का मार्मिक वर्णन किया गया है, इसमें कण्व के शकुन्तला की विदाई के विचार से द्रवित एवं करुणभाव को प्राप्त हुए हृदय की मार्मिक व्यथा दर्शनीय है। इसमें करुणभाव का सर्वोत्तम। प्रवाह होने से यह पद्य चारो पद्यों में सर्वोत्तम है। इसमें बाह्य प्रकृति से मानव की अन्तःप्रकृति का गूढ़ सम्बन्ध व्यक्त किया गया है तथा कवि ने मानव हृदय और प्रकृति का सामंजस्य स्थापित करके जड़ प्रकृति को मानव के जैसी ही अनुभूतिशालिनी बना दिया है –

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 4 / 20)

इस श्लोक में सर्वदमन (भरत) के रूप में इस विशाल राष्ट्र के रक्षक की ऐसी छवि के दर्शन कवि ने कराये हैं जो मोहक तो है ही, साथ–साथ प्रेरक भी है–

अर्थो हि कन्या परकीय एव, तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतु।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 4 / 22)

कण्व ऋषि कहते हैं कि कन्या पराया धन है अतः उसको पतिगृह भेजकर आज मेरी अन्तरात्मा वैसे ही स्वस्थ्य, शान्त हो गई है जैसे कोई व्यक्ति किसी की धरोहर लौटाकर स्वच्छ

हो जाता है। यह भारतीय संस्कृति के अनुकूल एक सद्‌गृहस्थ की भावना का प्रतिफलन है। चतुर्थ अंक का वातावरण अत्यन्त ही करुण है। गौतमी के पुनः याद दिलाने पर कि विदाई का समय हो रहा है, शकुन्तला अन्तिम बार पिता कण्व के गले से लगकर रोती है। शकुन्तला का पितृ–स्नेह तथा कण्व का वात्सल्य दोनो के संगम का वातावरण अत्यन्त ही कारुणिक हो जाता है। इस अंक में प्रकृति स्वयं पात्र के रूप में चित्रित है, शकुन्तला के शृंगार के लिए आभूषण देती है और उसकी विदाई से दुःखी है। शकुन्तला को प्रकृति से अगाध प्रेम था। उसकी विदाई पर वृक्ष रो पड़े, वनदेवताओं ने आशीर्वाद दिया, हरिणियों ने कुशों के ग्रास उगल दिये हैं, मयूरों ने नाचना छोड़ दिया और लताएँ पीले पत्तों को गिराकर मानो आँसू बहा रही हैं –

उद्‌गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुंचन्त्यश्रूणीव लताः।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 4 / 12)

अन्तःप्रकृति तथा बाह्य प्रकृति का समन्वय भी कालिदास ने इस अंक में अत्यन्त मार्मिक रूप में किया है। पतिवियोग में शकुन्तला वैसे दुःखी है, जैसे चन्द्रमा के वियोग में कुमुदिनी –

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 4 / 3)

उपर्युक्त विवेचनों से यह स्पष्ट होता है कि इस अंक के प्रायः सभी दृश्य करुण रस से ओत–प्रोत हैं। इसमें प्रसंग के अनुकूल रौद्र तथा वात्सल्य रसों का भी पूर्ण परिपाक हुआ है। इसमें ओज के साथ मनोज्ञता तथा भावप्रांजलता का अनुपम समन्वय स्थापित हुआ है। कालिदास नारी एवं प्रकृति–सौन्दर्य के अनुपम कवि हैं। उनके वर्णन इतने सजीव हैं कि रंगों और रेखाओं के बिना ही उनके द्वारा प्रस्तुत दृश्यों का अवलोकन किया जा सकता है।

कालिदास वस्तुतः प्रेम के कवि थे और यही कारण है कि उनकी कृतियों में जुगुप्सा और घृणा के दर्शन चेष्टा करने पर भी नहीं होते हैं। सुन्दरता उन्हें अतीव प्रिय है और उन्होंने 'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः' की सूक्ति को सर्वत्र गरिमा प्रदान की है।

जीवनस्य परमोद्देश्यं शान्तिः

मधुस्मिता डेका
एम.ए.पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

मानवो यदा स्वेन्द्रियेभ्यः रूपरसादिविषयाणाम् उपभोगे सर्वथा लिप्तो भवति तदा सः भौतिकसुखमवाप्नोति, यदा तु इन्द्रियाणि निगृह्य मनसा सह आत्मनि स्थैर्यं प्राप्नोति तदा सः शान्तिमार्गमधिगच्छति। शान्तिरेव पराकाष्ठा परमगन्तव्यमित्येवं वैदिकवाङ्मये उपदिष्टमस्ति।

इदानीं सम्पूर्णे विश्वस्मिन्नशान्तिवातावरणस्य महान् चीत्कारः श्रूयते। आधुनिकयुगस्य भ्रान्त–मानवाः मानवतायाः मार्गं परित्यज्य निश्चितरूपेण विकासाय सांसारिक–भौतिक सुखभोगाय च चेष्टन्ते यस्य परिणामे अनैतिककार्यं कुर्वन्तोऽपि नैव विजानन्ति, दृष्ट्वा अपि न पश्यन्ति, श्रुत्वाऽपि न शृण्वन्ति, त्यक्त्वाऽपि न त्यजन्ति। इदानीं यस्मिन् प्रवाहे प्रवहन्ति मानवाः तत्र अज्ञानान्धकारस्य साम्राज्यं वर्तते। मानवानां प्रवाहेऽस्मिन् न दृश्यते किमिपि लक्ष्यं न तु कर्तव्यम्। फलतः सर्वे मानवाः शान्तिलाभार्थमितस्ततः धावन्ति। शान्तिमार्गमुपदिश्य कथितं भगवता श्रीकृष्णचन्द्रेण गीतायाम् –

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।

भारतीय संस्कृतौ मानवजीवनस्य सर्वोपरित्वम् अभिलक्ष्य तल्लक्ष्यरूपेण पुरुषार्थचतुष्टयमुपदिष्टम्। तत्र भौतिकजगत्यां धमार्थकामानां महत्त्वमधिकं वर्तते। किन्तु जीवनोद्देश्यं केवलं भौतिकं नास्ति। आत्मोद्धारस्य अवसरं प्राप्य यदि मानवाः तदर्थं न प्रयतन्ते महतो तर्हि हानिः इत्येवं वैदिकवाङ्मयं निर्दिशति। आत्मोद्धारस्य महत्त्वम् ईशोपनिषदि एवं प्रकाशितं वर्तते–

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छति ये के चात्महनो जनाः।।

(ईशोपनिषद् 3)

आत्मोद्धारस्य मार्गः शान्तिमार्गः श्रेयोमार्गो वा अस्ति। मानवजीवनस्य परमोद्देश्यं शान्तिरेव, न तु सुखम् । आत्मोद्धारः आत्मदर्शनम् वा अशान्तेन मनसा नैव भवितुमर्हति। यथोक्तं कठोपनिषदि–

नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमवाप्नुयात्।

कठोपनिषदि यमः नचिकेतसं प्रति श्रेयस्–प्रेयस्–नामानौ मार्गौ उपदिष्टवान्। तदुक्तं च–

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।

श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।

अत्र श्रेयसः फलं मोक्षः, प्रेयसः' फलं सांसारिकभोगः अस्ति। मोक्ष एव शान्तिः सांसारिक भोग एव सुखम्। यः खलु श्रेयोमार्गमनुसरति सः परमशान्तिलाभे समर्थो भवति। पुनः च यः प्रेयोमार्गमनुसरति, सः भौतिकसुखलाभे समर्थो भवति।

शान्तिपदमेव परमात्मनः परमं धाम उक्तम्। तदेव मानवस्य परमं चरमञ्च गन्तव्यमित्येवं शास्त्रविद्भिः उपदिष्टमस्ति। यदुक्तं श्रीमद्भगवद्गीतायाम्–

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

शान्तिमार्ग एवं अध्यात्ममार्गः अस्ति यदनुसृत्य मानवः संसारस्य द्वन्द्वेभ्यः आत्मानमुद्धरति। समेषाम् इन्द्रियाणां निग्रहपूर्वकम् आत्मनि लय एव शान्तिमार्गं प्रकाशयति। भौतिकसुखावाप्तिस्तु नानाकामोपभोगैः लब्धा भवति। किन्तु कठोपनिषदि नचिकेता ब्रूते–

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।

अपि च–

वरस्तु मे वरणीयः स एव।

न केवलं नचिकेतसः अपि तु मानवमात्रस्य वरणीयो वरः सा एव शान्तिः न तु भौतिक सुखापेक्षा।

आओ, आज एक नया भारत बनाते हैं

एकता तिवारी
बी.ए.द्वितीय वर्ष

आओ, आज एक नया भारत बनाते हैं।
जहाँ हो एकता हर व्यक्ति के अन्तर्मन में
एक सुखद परिवार बनाते हैं।
जहाँ हो सभी मित्र, नहीं हो काई रंजिश
आज एक नया हिन्दुस्तान बनाते हैं,
आओ, आज एक नया भारत बनाते हैं।
न हो कोई भेद, हर जाति स्वतन्त्र हो,
जहाँ इस देश की माटी को
सिर का राजतिलक बनाते हैं,
आओ, आज एक नया भारत बनाते हैं।
जन्म ले बेटा या फिर कन्या घर में,
दोनों का ही प्रेम–स्नेह से सिंचन हो
न कोई वंचित अपनी स्वतन्त्रता से,
आज ऐसा एक अनुबन्ध बनाते हैं।
आओ, आज एक नया भारत बनाते हैं।
देश के कृषकों का अभिवादन
जो किसी की भूख मिटाते हैं
देश की सेना का अभिवादन
जो देश की रक्षा में प्राण दे जाते हैं
उनके बलिदानों का सुन्दर प्रतिमान बनाते हैं
आओ, आज एक नया भारत बनाते हैं।

वेदेषु राजधर्मः

प्रतीति आर्या
एम.ए. पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

ईश्वरप्रदत्तानि वेदशास्त्राणि सम्पूर्णस्यैव मानवसमाजस्य कल्याणाय प्रवर्त्तन्ते। चराचरजगतः संरक्षणाय यावन्त्यः शिक्षाः अपेक्ष्यन्ते ताः सर्वाः शिल्पकला– वास्तुकला– औषधिविज्ञान– राजशास्त्र– कामशास्त्र– धर्मशास्त्रादिविविधरूपेण एतेषु शास्त्रेषु प्राप्यन्ते। प्रजायाः सम्यक् परिपालनार्थं संरक्षणार्थञ्च एतेषु ग्रन्थेषु राजधर्मस्य नियमाः निर्दिष्टाः सन्ति। राज्ञः स्वरूपं कीदृशं स्यात् तस्य ज्ञानं कर्माणि च कीदृशानि भवेयुः इत्यादिकं वेदवेदाङ्गेषु अन्येषु च आचारग्रन्थेषु वर्णितमुपलभ्यते। कौटिल्यस्य अर्थशास्त्रे तु राज्ञः कृते वेदानां दण्डनीतेः वार्तायाः आन्वीक्षिक्याश्च सम्यक् ज्ञानं आवश्यकं वर्णितमस्ति। यदि राजा विनयशीलः अनुशासनप्रियः विचारशीलः दण्डप्रियश्च भविष्यति तर्हि तस्य प्रजाः अपि अनुशासनमाचरन्त्यः स्वीयानि कर्माणि सविधि न्यायपूर्वकञ्च सम्पादयिष्यन्ति। केनचित् सत्यमेव भणितमस्ति––

यथा राजा तथा प्रजा इति।।

राज्ञः निर्देशानुसारं शिक्षिताः प्रजाः सुष्ठु कार्यं कुर्वन्ति। यदि दण्डस्य भयं राज्ये भवति तर्हि दुष्कार्येषु प्रजानां प्रवृत्तिः न भवति। दण्डद्वारैव समस्ता व्यवस्था सम्यक् सञ्चाल्यते। मनुस्मृतौ उक्तमस्ति––

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।

कौटिलीये अर्थशास्त्रे राजधर्मविषये सविस्तरं वर्णनमुपलभ्यते। राज्ञः किमपि स्वकीयं हितं स्वार्थो वा न भवति। प्रजायाः हिते एव सः निरतो भवेत् इत्येवं सङ्कल्पना प्राचीनभारतीयायां राजव्यवस्थायां परिकल्पितमासीत्। एतेषां मूलं वैदिकग्रन्थेषु पुराणेषु चापि सुष्ठु उपलभ्यते। शुक्लयजुर्वेदस्य माध्यन्दिनशाखायामीदृशस्य राष्ट्रस्य स्वरूपं चित्रितमस्ति

यत्र राजा न्यायप्रियः धर्मप्रियः प्रजाहितकारी संरक्षकश्च स्यात्, तत्र राष्ट्रे सर्वेषां वर्गाणां पशुपक्षीणां वृक्षवन्यौषधीनां समुन्नतिपूर्वकं राष्ट्रस्य समग्रविकासः सर्वत्र प्रसरेत्। वेदेषु समृद्धराष्ट्रस्यावधारणा इत्थं प्रकाशिता वर्तते–

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधि महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।। शुक्लयजुर्वेद 22/22

अथर्ववेदीये पृथिवीसूक्ते पृथ्वी मातृरूपेण प्रजाः सर्वाश्च तत् सन्ततिरूपेण प्रोक्ताः। एतत् सर्वं राष्ट्रस्य आदर्शरूपं सृष्टेर्वा सद्भावपूर्णा स्थितिः तदैव सम्भवति यदा राजधर्मस्य राज्ञा सम्यक् परिपालनं क्रियेत समस्त चराचरणाञ्च सदा संरक्षा कृता भवेत्। अधुना तु भारतीयलोकतन्त्रे यादृशी स्थितिः वर्त्तते तत्र नेतारः उच्चाधिकारिणः प्रजाश्चापि स्वैरं व्यवहरन्ति। आत्मनः चरितमपि सम्यक् न संरक्ष्यते। भौतिकस्पर्धायां कर्तव्याकर्तव्यविवेकः शून्यतां गतोऽस्ति। देशद्रोहिणः आतङ्कवादिनः स्तेनाः मिथ्याभाषिणश्च अनुदिनं प्रवर्धन्ते। दण्डस्य कुत्रापि भयं न दृश्यते। लोकतन्त्रे सर्वेऽपि आत्मनः किमपि वक्तुं किमपि कर्तुञ्च स्वतन्त्रान् मन्यन्ते। ईदृश्यामवस्थायां तु व्यष्टिरूपेण समष्टिरूपेण वा समाजस्य राष्ट्रस्य वा उन्नतिः नैव सम्भाव्यते। लोकतन्त्रेऽपि राजधर्मस्य सम्यक् परिपालनं दण्डव्यवस्थाद्वारा प्रजानां नियमनं च स्यात् तदैव परस्परं सामञ्जस्येन सर्वेषामुन्नतिः भविष्यति राष्ट्रोत्थानं च भविष्यति।

संस्कृत काव्यशास्त्र की चिन्तन–दृष्टि

सौम्या द्विवेदी
एम.ए पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

संस्कृत काव्यशास्त्र अत्यन्त सूक्ष्म और समृद्ध है। इसके विकास में जिन आचार्यों का योगदान है, वे अत्यन्त मेधावी,तत्त्वदर्शी और गंभीर विचारक थे। भरतमुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक लगभग डेढ़–दो हजार वर्ष तक फैली हुई संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में विभिन्न काव्यसिद्धांतों का प्रतिपादन और खंडन–मंडन होता रहा। भरत के बाद भामह, दंडी, उद्भट, वामन, रुद्रट, भट्टलोल्लट, शङ्कुक, भट्टनायक, आनन्दवर्ध्दन, अभिनवगुप्त, राजशेखर, कुंतक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, मम्मट, रुय्यक, हेमचन्द्र, विश्वनाथ कविराज, शारदातनय, भानुदत्त,पंडितराज जगन्नाथ, अप्पय दीक्षित, जयदेव, आदि अनेक आचार्यों ने अपने चिंतन से इसे समृद्ध किया। इन आचार्यों ने शब्द और अर्थ के सह–भाव की अनेक विशेषताओं को सामने रखकर जो काव्य–चिन्तन किया है, वह श्लाघ्य और स्पृहणीय है। संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में काव्य (साहित्य) संबंधी विभिन्न प्रश्नों और शंकाओं को उठाने और उनका उत्तर देने की खंडन–मंडन की प्रक्रिया के फलस्वरूप काव्यसिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ। ये सिद्धांत जिन्हें 'सम्प्रदाय' कहा जाता है, छः हैं– यथा रससम्प्रदाय– भरतमुनि, अलंकार सम्प्रदाय– भामह, रीतिसम्प्रदाय– वामन, ध्वनिसम्प्रदाय– आनन्दवर्ध्दन, वक्रोक्तिसम्प्रदाय– कुन्तक, औचित्यसम्प्रदाय– क्षेमेन्द्र।

भारतीय आचार्यों की परम्परा रही है कि वे किसी मत या विचारधारा को आँख मूँद कर स्वीकार नहीं करते अपितु प्रत्येक सम्प्रदाय की विचारधाराओं, मतों या सिद्धांतों के खंडन–मंडन के माध्यम से निष्कर्ष निकालते हैं। ये संस्कृत आचार्य आत्मा और देह को अलग अलग मानते हैं। इसलिए दो तरह की विचारधाराएँ बराबर सक्रिय रहीं–प्रथम आत्मा को प्रधानता देने वाली विचारधारा तो द्वितीय शरीर को प्रधानता देने वाली विचारधारा। प्रथम विचारधारा के अन्तर्गत रससम्प्रदाय, ध्वनिसम्प्रदाय और औचित्यसम्प्रदाय को स्थान मिला। द्वितीय विचारधारा के अन्तर्गत अलंकारसम्प्रदाय, रीतिसम्प्रदाय, वक्रोक्तिसम्प्रदाय को स्थान

मिला। आत्मवादी और शरीरवादी विचारधारा दोनों चिंतन परम्पराओं में इस बात को लेकर गँभीर चिंतन मनन होता रहा कि काव्य (साहित्य) का प्राणतत्त्व क्या है? काव्य की आत्मा क्या है? यह प्रश्न निरंतर विमर्श का मुद्दा बना रहा। आत्मा शब्द दर्शन का है और संस्कृत काव्यशास्त्र व्याकरण तथा दर्शन से अभिन्न होकर ही आगे बढ़ा है। शब्द और अर्थ के सहभाव का नाम साहित्य है, लेकिन इस बात पर विवाद उठा कि शब्द और अर्थ में प्रधान कौन है? शरीरवादी शब्द को प्रधानता देते हैं तो आत्मवादी अर्थ को प्रधान मानते हैं। विचार–विनिमय के पश्चात् यह स्वीकारा जा सका कि काव्य की आत्मा न तो रस है न ध्वनि और न औचित्य। काव्य की आत्मा तो रस– ध्वनि ही कही जा सकती है।

काव्य के संदर्भ में 'आत्मा' शब्द लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। मूलतः आत्मदर्शन चिंतन का विषय रहा है जिससे सार तत्त्व की खोज होती रही। जिसप्रकार जीवित प्राणी की संपूर्ण चेतना का पर्याय आत्मा है, उसके न होने पर शरीर मृत या निरर्थक हो जाता है, ठीक उसी तरह खोज का विषय यह रहा है कि काव्य का प्राण–तत्त्व क्या है ? यह चिंतन काव्यशास्त्र के सम्प्रदायों या परम्परा के अंतर्गत हुआ ।

भरतमुनि के समय से काव्यशास्त्र का आरंभ माना जाता है। भामह से लेकर आनन्दवर्धन तक के समय में अलंकारसम्प्रदाय, रीतिसम्प्रदाय, रससम्प्रदाय और ध्वनि सम्प्रदाय का विकास हुआ। इसके बाद वक्रोक्तिसम्प्रदाय के आचार्य कुंतक और औचित्य सम्प्रदाय के आचार्य क्षेमेन्द्र आते हैं। भारतीय चिंतन का चरम उत्कर्ष ध्वनिसम्प्रदाय में हुआ है। यह सम्प्रदाय वस्तु, अलंकार, रस सबका अपने भीतर समावेश कर लेता है। ध्वनिसिद्धांत में व्यंजना शक्ति के विविध रूपों को सामने लाकर बोधव्य– भेद से काव्य के प्रतीयमान अर्थ को ग्रहण करने की दिशा में जो महनीय कार्य किया गया, उसे विद्वानों ने अप्रतिम माना है।

भारतीय दार्शनिकों को व्यक्त जगत् के अनित्य स्वरूप की मीमांसा से संतोष नहीं हुआ था तो उन्होंने उस तत्त्व को जानना चाहा , जो नित्य, मुक्त, अपरिणामी और जड़– चेतन सब मे व्याप्त है। ठीक उसी प्रकार संस्कृत काव्यचिंतकों की तलाश भी अन्ततः रसध्वनि के रूप में पूरी हुई। इस प्रकार संस्कृत काव्यचिंतन अपनी समृद्ध विरासत को संजोए हुए है। मुख्यतः कमी इस बात की है कि प्राचीन काव्यचिंतन की समृद्ध परंपरा को नए संदर्भ मे व्याख्यायित करके उसे आधुनिक संवेदना के साथ जोड़कर समझने की कोशिश करनी होगी।

तत्त्वमसि वाक्यार्थविचार

सुदेष्णा दे
एम.ए,पूवार्द्ध, संस्कृतविभाग

भारत के पुरातन सनातन धर्म पर बहुत सारे शास्त्र और उपनिषद् उपलब्ध हैं । शङ्कराचार्य जी ने उपनिषद् का अर्थ किया है। 'उप','नि','षद्'। 'उप' का अर्थ है– समीप, 'नि' का अर्थ है– अत्यन्त और 'षद्' का अर्थ है अवसादन अर्थात् विनाश। अतः सम्पूर्ण उपनिषद् शब्द का अर्थ यह है कि जो जिज्ञासु श्रद्धा और भक्ति के साथ उपनिषदों के अत्यन्त समीप जाता है अर्थात् उनका विचार करता है वह आवागमन के क्लेशों से निवृत्त हो जाता है । कतिपय आचार्यों ने इसका ऐसा भी अर्थ किया है, उप– समीप, नि– अत्यन्त, षद्– बैठना अर्थात् जो जिज्ञासु को अध्ययन–अध्यापन के द्वारा ब्रह्म के अतिसमीप बैठने के योग्य बना देता है , वह उपनिषद् कहा जाता है ।

उपनिषदों और शास्त्रों में चार महावाक्य वर्णित हैं–

- **''अहं ब्रह्मास्मि''** अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ'(बृहदारण्यकोपनिषद् १/४/१०, यजुर्वेद)
- **''तत्त्वमसि''** अर्थात् 'वह तुम हो' (छान्दोग्योपनिषद् ६/८/७, सामवेद)
- **''अयम् आत्मा ब्रह्म''** अर्थात् 'यह आत्मा ब्रह्म है' (माण्डूक्योपनिषद् १/२, अथर्ववेद)
- **''प्रज्ञानं ब्रह्म''** अर्थात् ''वह प्रज्ञान ही ब्रह्म है। (ऐतरेय उपनिषद् १/२, ऋग्वेद)

इन चार महावाक्यों में से एक है– तत्त्वमसि– तत् त्वम् असि । इस वाक्य का शाब्दिक अर्थ है, ''वह तुम ही हो'' । सामवेदीय छान्दोग्य ब्राह्मण का औपनिषदिक भाग है जो प्राचीनतम दस उपनिषदों में नवम एवं सबसे बृहदाकार है। ''तत्वमसि'' यह महावाक्य छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है। इस उपनिषद् में दस अध्याय हैं। नाम के अनुसार इस उपनिषद् का आधार

छन्द है। साहित्यिक कवि की भाँति ऋषि भी मूल सत्य को विविध माध्यमों से अभिव्यक्त करता है। वह प्रकृति के मध्य उस परम सत्ता के दर्शन करता है।

छान्दोग्योपनिषद् के अष्टम अध्याय में शरीर में स्थित आत्मा की अजरता–अमरता का विवेचन किया गया है। इस अध्याय के पन्द्रह खण्ड हैं। एक से छः खण्ड तक के भाग में शरीर में आत्मा की स्थिति के विषय में बताया गया है। इन छः प्रारम्भिक खण्डों में शरीर के भौतिक स्वरूप में आत्मा की स्थिति का वर्णन किया गया है और हृदय तथा आकाश की तुलना की गयी हैं। यहाँ आत्मा के इस प्रसंग को गुरु–शिष्य परम्परा के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया हैं। गुरु अपने शिष्यों से कहता है कि मानव–हृदय में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से 'ब्रह्म' विद्यमान रहता है।

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तं हृदयमिति। (३/३, छा0)

अर्थात् वह आत्मा हृदय में ही स्थित है। 'हृदय' का अर्थ है 'हृदि अयम्', वह हृदय में हैं। यही आत्मा की व्युत्पत्ति है।इसप्रकार जो व्यक्ति आत्मतत्त्व को हृदय में जानता है, वह प्रतिदिन स्वर्गलोक में ही गमन करता है। वास्तव में जितना बड़ा यह आकाश है, उतना ही बड़ा और विस्तृत यह चिदाकाश हृदय भी है। इस हृदय में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में 'आत्मा' निवास करता है। यह शरीर समय के साथ–साथ जर्जर होता चला जाता है और एकदिन वृद्ध होकर मृत्यु का ग्रास बन जाता है। इसीलिए शरीर को नश्वर कहा गया है। परन्तु इस शरीर में जो 'आत्मा' विद्यमान है, वह कभी नहीं मरता,वह न तो जर्जर होता है, न वृद्ध होता है और न मरता है।

स य एषो अणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स

आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो। (६/८/७, छा.)

इस एक वाक्य को भी पकड़ कर कोई पूरा अनुसन्धान कर ले तो जीवन की परम स्थिति को उपलब्ध हो जाए।इसलिए इसको महावाक्य कहते हैं। इस एक वाक्य का कोई ठीक से श्रवण कर ले, मनन कर ले, निदिध्यासन कर ले तो किसी और शास्त्र की कोई जरूरत नहीं है। इसमें तीन बातें कही गईं हैं तत् त्वम् असि। तत् और त्वम् दोनों एक है। बस इतना ही यह सूत्र है। लेकिन सारा वेदान्त ऋषियों का सारा अनुभव इन तीन में आ जाता है। उपनिषद् का यह महावाक्य निराकार ब्रह्म और उसकी सर्वव्यापकता का परिचय देता है।

''तत्त्वमसि'' वाक्य तीन सम्बन्धों के द्वारा अखण्ड अर्थ निष्कल–निर्गुण ब्रह्म अर्थात् अनुपहित आधारभूत चैतन्य का बोधक बनता है। वेदांत का निष्कल–निर्गुण ब्रह्म स्वगत, सजातीय एवं विजातीय इन विविध भेदों से रहित होने के कारण अखण्ड वाला कहा जाता है। प्रधानतया तीन भेद सम्भव हैं। शाखा, पत्र, मूल आदि होने से वृक्ष स्वगत भेद वाला है। फिर वृक्ष जाति में ही आम, आमलक,जामुन आदि अनेक जातियाँ होती है। ये परस्पर सजातीय भेद वाले भी हैं। वृक्ष जाति से भिन्न अन्य मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि जातियाँ है। अतः आम या अन्य कोई भी वृक्ष इन विजातीयों से भिन्न होने से माया एवं असम्पृक्त एवं असम्पृष्ट है।उसके अतिरिक्त कोई और चेतन तत्त्व है ही नहीं जिससे उसका सजातीय भेद हो। चेतन जीव तो उससे अभिन्न है। अतः ब्रह्म सजातीय भेद से रहित है।

इदं ''तत्त्वमसि'' इति वाक्यं सम्बन्धत्रयेणाखण्डार्थबोधकं भवति। सम्बन्धत्रयं नाम पदयोः सामानाधिकरण्यं, पदार्थयोर्विशेषणविशेष्यभावः, प्रत्यगात्मपदार्थ–योर्लक्ष्यलक्षणभावश्चेति। (वेदान्तसार।।५२।।)

तीन सम्बन्ध ये हैं–

- सामान्याधिकरण्य (दोनों तत् तथा त्वम् पदों का)
- विशेषणविशेष्यभाव (दोनों पदों के वाच्यार्थों में)
- लक्ष्यलक्षणभाव (प्रत्यगात्मा तथा दोनों पदों के वाच्यर्थ में)

समानाधिकरण्य

समान विभक्ति वाले दो पदों का एक ही अर्थ के लिए प्रयुक्त होना, एक ही अर्थ में उनका तात्पर्य होना– 'सामानाधिकरण्य' कहा जाता है।एक ही अर्थ के लिए प्रयुक्त होने पर दोनों में एक ही विभक्ति होगी। इसीलिये एक ही विभक्ति–समान ही अधिकरण में होना समानाधिकरण्य कहा जाता है। भिन्न या पृथक् प्रवृत्ति निमित्त वाले दो शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयुक्त होना समानाधिकरण्य कहलाता है। जैसे 'रक्तः घटः' में 'रक्तः' शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त है 'रक्तत्व' और घट शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त है 'घटत्व'। इन दोनों शब्दों का घट रूप एक ही अर्थ के लिए प्रयोग होने से दोनों का सामानाधिकरण्य हुआ।

विशेषणविशेष्यभाव

विशेषणविशेष्यभाव का नियामक वक्ता की इच्छा होती है।'सः अयम् देवदत्तः' वाक्य में जब ' सः' पद का वाच्यार्थ उस काल–देश में रहने वाला,'अयम्' पद के वाच्यार्थ इस देश–काल में रहने वाले देवदत्त से अभिन्न प्रतीत होता है, तब 'सः' पद का वाच्यार्थ 'अयम्' पद के वाच्यार्थ में स्थित भेद का व्यावर्तक होकर विशेषण बनता है। इसी तरह जब वक्ता को स्वेच्छा से 'सः अयम् देवदत्तः' वाक्य 'अयम् सः देवदत्तः' रूप मे गृहीत होता है, तब 'अयम्' पद का वाच्यार्थ 'सः' पद के वाच्यार्थ से अभिन्न प्रतीत होता है और 'अयम्' पद का वाच्यार्थ 'सः' पद के वाच्यार्थ में स्थित भेद का व्यावर्तक होकर उसका विशेषण बनता है। इस प्रकार दोनों ही पदों के वाच्यार्थ विवक्षा से परस्पर विशेषण–विशेष्य बनते हैं। 'तत्त्वमसि' वाक्य के 'तत्' और 'त्वम्' पदों के वाच्यार्थ भी इसी प्रकार एक–दूसरे के विशेषण–विशेष्य बनते हैं।

लक्ष्यलक्षणसम्बन्ध

मुख्यार्थ का बाध होने पर उससे युक्त अर्थान्तर का ग्रहण जिस शक्ति से होता है,उसे लक्षणा कहते हैं जो अर्थान्तर गृहीत होता है, वह लक्ष्यार्थ कहा जाता है। जिस पद में लक्षणा होती है, उसे लाक्षणिक पद या शब्द कहते हैं।

लक्षणा तीन प्रकार की होती है– जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा, जहदजहल्लक्षणा।

जहल्लक्षणा

वाच्यार्थ का पूर्ण रूप से परित्याग हो जाने पर उससे सम्बद्ध दूसरे अर्थ का बोध कराने वाली शब्द की वृत्ति को जहल्लक्षणा कहते हैं। इसका प्रसिद्ध उदाहरण 'गङ्गायां घोषः' है।

अजहल्लक्षणा

जिसमें वाच्यार्थ या मुख्यार्थ का बिना परित्याग किये उससे सम्बद्ध अर्थ का बोध या ग्रहण हो जाता है,उसे अजहल्लक्षणा कहते हैं। इसको उपादान लक्षणा भी कहते हैं, क्योंकि वाच्यार्थ से अतिरिक्त अर्थ का उपादान अर्थात् ग्रहण इस लक्षणा के द्वारा किया जाता है। इसका प्रसिद्ध उदाहरण 'शोणो धावति'।

जहदजहल्लक्षणा

जिसमें मुख्यार्थ या वाच्यार्थ का अंशतः तो त्याग होता है परन्तु अंशतः त्याग नहीं होता

उसे जहदजहत् कहते हैं। दूसरे शब्दों में इस लक्षणा में वाच्यार्थ का पूर्णतः त्याग न होकर, एक ही अंश या भाग का त्याग होता है। इसी के कारण इसका दूसरा नाम 'भागत्यागलक्षणा' है जैसा कि प्रस्तुत ग्रन्थ में **'तत्त्वमसि'** वाक्य के अर्थ–बोध में अपेक्षित इस लक्षणा के इसी नाम से निर्दिष्ट करने से स्पष्ट है।

ब्रह्म आत्मा है, इस रूप से ही ब्रह्म को ग्रहण करना चाहिए। दार्शनिकों के मत मे वही 'आत्मा' है। वेदान्त वाक्य ब्रह्म को स्वीकार करते हैं। वेदान्त मत में 'तत्त्वमसि', महावाक्य में 'अभेद' का प्रतिपादन किया गया है, भेदवादी **'तत्'** एवं **'त्वम्'** पद में भेद प्रतिपादन करते हैं। 'ब्रह्मभिन्नता' हेतु 'ब्रह्मात्मैक्य' का होना आवश्यक है, जिससे 'अखण्डार्थ' की प्राप्ति होती है । 'तत्त्वमसि' महावाक्य के द्वारा 'शब्द परोक्षज्ञान' ही उपपन्न होता है, जो प्रत्यक्षतः ही अनुभूति कराता है जिसे शब्द–परोक्षज्ञान ही कहना चाहिए क्योंकि इसके बिना 'अखण्डार्थत्व' असम्भव है।

स्वच्छभारतं श्रेष्ठभारतम्

आकांक्षा कुमारी मौर्या
एम0ए0 पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

भारतवर्षस्य संस्कृतिः अतिप्रचीना ज्ञानमूला च वर्तते। मनुष्यजीवनस्य महत्त्वमालोच्य ऋषिभिरत्र वर्णाश्रमव्यवस्था विहिता यस्यां व्यवस्थायां प्रतिवर्णं कर्मणः निर्धारणं कृतमासीत्। एवमेव पुरुषार्थचतुष्टयम् आधृत्य जीवने अर्थोपार्जनस्य, धर्माचरणस्य, कामोपभोगस्य, मोक्षचर्यायाश्च उपदेशः आचार्यैः स्वकीयेषु ग्रन्थेषु कृतः। सर्वमिदं कर्मज्ञानं संस्कृतभाषायां निहितं, या प्राक् जनभाषा आसीत्। अद्यत्वे तु संस्कृताध्ययनं प्रति जनानां रुचिर्नास्ति अत एव सदाचारस्य, कर्मनिर्वाहस्य, धर्माचरणस्य च ये नीतिनियमाः शास्त्रेषु निबद्धाः ते दृष्टिपथं न आयान्ति।

इदं तु सर्वविदितं यत् स्वच्छतायामेव ईश्वरस्य वासो भवति। शुचिता, निर्मलता, दोषराहित्यं च स्वच्छतायाः परिचायकम्। इयं स्वच्छता द्विधा भवति आन्तरिकी बाह्या च। कलुषितविचाराणां परित्यागः, अन्यान् प्रति परुषवचनस्य परित्यागः,सर्वेषां प्राणिनां संरक्षणाय उद्यमः इत्येतानि सर्वाणि आन्तरिकस्वच्छतायां परिगणितानि एवञ्च सम्पूर्णदृश्यमानजगतः शुद्धता निर्मलता च बाह्यस्वच्छता वर्तते। मनसा, वाचा, कर्मणा च जनाः नियममार्गमुझित्वा तात्कालिकलाभाय दोषमयं मार्गमनुसरन्ति। अन्येषां कृते मनसि द्वेषः वचसि उग्रता कर्मणि वैमनस्यं च द्योतते। इदमेव कारणं यत् सर्वत्र अन्तःबाह्यं मालिन्यमनुभूयते अवलोक्यते च। मनोमालिन्यस्य प्रभावः अस्माकं बाह्यकर्मस्वपि दृश्यते। जनाः स्वकीयं गृहं स्वच्छं कृत्वा अपशिष्टं मार्गे प्रक्षिपन्ति, गृहेषु शौचालयनिर्माणं न कृत्वा क्षेत्रेषु मार्गेषु च शौचक्रियामाचरन्ति। ताम्बूलं चर्वयित्वा क्वचिदपि निष्ठीवनं कुर्वन्ति। नदीजलेषु कर्दमानि प्रवाहयन्ति, धूम्रपानं कृत्वा वायुं प्रदूषयन्ति, चिकित्सालयानां कर्दमादिकं मार्गे प्रक्षिपन्ति, पथिषु मांसाहारविक्रयस्थलानि

उद्घाट्य पथिकानां कृते वितृष्णाजनकं दृश्यमुत्पादयन्ति। एतानि सर्वाणि अन्यानि चाप्यस्माकं बहूनि कर्माणि राष्ट्रविकासे अवरोधकराणि। भारतं निर्धनं, साधनरहितं, दुर्दशोपेतं राष्ट्रं इत्यस्य छविः विश्वपटले जायते। मनुष्यः सामाजिकः प्राणी वर्तते। स यादृस्मिन् समाजे निवसति तादृशः एव तस्य विचारः आचारः विकासश्च सम्भाव्यते। अतो मानवस्य सर्वाङ्गविकासाय नितान्तमावश्यकमिदं यत् तस्य समाजः परिवेशश्च सर्वथा सत्त्वभावोपपन्नः भूयात्। स्वच्छता नैर्मल्यं च समाजस्य प्रत्येकं जनस्य योगदानेन सम्भवति। अत एव सर्वैरेव मिलित्वा स्वकीयं समाजं राज्यं राष्ट्रं च नैर्मल्ययुतम् उत्कृष्टतमं विधातुं प्रयत्नो विधेयः।

दूषिते परिवेशे नानाविधा व्याधयः जायन्ते इति निश्चप्रचम्। पर्यावरणं प्रदूषितं न स्यात् अत एव जनैः गृहाणां अपशिष्टानि न सर्वत्र प्रक्षेपणीयानि अपितु कर्दमपेटिकायामेव प्रक्षेपणीयानि। प्रतिगृहं शौचालयनिर्माणं कारयितव्यम् एवञ्च तस्य प्रयोगोऽपि कर्तव्यः।

अस्माकं देशे विविधसंज्ञोपेता नद्यः वैविध्ययुतां संस्कृतिं सभ्यतां च समावहन्ति। यदि नदीनाम् अस्तित्वमेव न भवेत्, नदीषु अत्यधिकं मालिन्यं जायेत तर्हि कीदृशी भारतीया संस्कृतिः सभ्यता वा दर्शनीया भविष्यति।

लघुसमाजैः मण्डलं, मण्डलैः जनपदं, जनपदैः राज्यम्, राज्यैश्च राष्ट्रं निर्मीयते। यदि समाजे सर्वे स्व–स्व कर्तव्यं सुष्ठुतया पूरयिष्यन्ति तर्हि सम्पूर्णमपि राष्ट्रं स्वतः एव स्वच्छं निर्मलं भविष्यति। स्वच्छवातावरणे एव सुष्ठुस्वास्थ्यस्य कल्पना कर्तुं शक्यते,यतो हि एकस्मिन् स्वस्थे एव शरीरे सुस्थिरा प्रज्ञा जायते। स्थिरप्रज्ञश्च राष्ट्रस्य समग्रविकासे स्वकीयं योगदानमर्पयितुं शक्तः भवति। वेदेषु पुराणेषु धर्मशास्त्रेषु च आन्तरिकं बाह्यं च पावनत्वं बहुशः प्रशंसितम्। राष्ट्रस्य संस्कृतेः सभ्यतायाः गौरवस्य च अभिवृद्ध्यर्थं प्रत्येकं जनैः स्वच्छतायाः अभियानेस्मिन् साहाय्यं कर्तव्यम्। यदा भारतवासिनः मनसा, वाचा, कर्मणा स्वच्छताम् अङ्गीकरिष्यन्ति तदैव राष्ट्रमिदं विश्वस्मिन् जगति स्वकीयं प्राचीनगौरवं प्रमाणीकरिष्यति। स्वच्छं भारतमेव श्रेष्ठं भारतं भविष्यति अत एव अस्माभिः दैनन्दिनजीवने स्वच्छता अवश्यमेव अङ्गीकरणीया अन्येऽपि देशवासिनः अस्मिन् कर्मणि नियोजनीयाश्च।

तीसरा विश्व एवं इसकी चुनौतियाँ

अर्पिता सिंह, दीपा भारती
एम्.ए.पूर्वार्द्ध, इतिहासविभाग

'तीसरा विश्व' इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रेंच लेखक 'अल्फ्रेड सौवी' नें शीत युद्ध के दौरान उन देशों के लिए किया था जो न ही साम्यवादी खेमे और न ही पश्चिमी खेमे से प्रतिबद्ध थे। सोवियत संघ की समाप्ति के पश्चात् 'तीसरे विश्व' की अवधारणा समय के साथ बदलती गयी। तीसरे विश्व के देशों में अधिकतर देश एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका तथा मिडिल ईस्ट के हैं जिनका एक औपनिवेशिक इतिहास रहा है। इन देशों की सूची में विकासशील, अल्प विकसित तथा निर्धन देश सम्मिलित हैं।

गौरतलब बात यह है कि इन देशों की विश्व की जनसंख्या में कुल हिस्सेदारी लगभग 75% है परन्तु संसाधनों का उपयोग ये केवल 20% ही करते हैं। इन देशों की विकास दर बहुत धीमी है और यहाँ मूलभूत सुविधाओं की कमी है। शिक्षा की कमी, स्वास्थ्य सुविधा का अभाव, कुपोषण , अस्वच्छता आदि की समस्या विकराल है।

तीसरी दुनिया के अन्तर्गत लगभग 166 विकासशील देश आते हैं जिनमें 52 अफ्रीकी देश शामिल हैं। गौर करने वाला तथ्य यह है कि संपूर्ण अफ्रीका में कुल देशों की संख्या ही 54 है। ये सभी देश आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं। इन विकासशील देशों के समक्ष गरीबी, भूख , अशिक्षा , हिंसा जैसी कई चुनौतियाँ हैं। इनमें स्वच्छ जल की समस्या चिन्तापूर्ण विषय है। गरीब और अल्पविकसित देशों की आबादी को पीने लायक पानी आज के आधुनिक युग में भी उपलब्ध नहीं है। हर साल अस्वच्छ पानी पीने से होने वाली मौतें किसी अन्य घटना से होने वाली मौतों के आंकड़ों से अधिक है।

'भोजन' हर व्यक्ति की ज़रूरत और उसका अधिकार होता है परन्तु आज भी करोड़ों अल्पविकसित देशों के नागरिकों को पर्याप्त भोजन नहीं मिल पाता है। इन देशों में स्वास्थ्य एवं पोषण की कमी से यहाँ अधिकतर बालक 5 वर्ष की उम्र के होने से पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जातें हैं। लगभग आधे विश्व की जनसंख्या स्वास्थ्य लाभ से वंचित है। एक आंकड़े के मुताबिक विकासशील देशों के नागरिक अपनी आय का लगभग 60-80% हिस्सा अपने भोजन

पर खर्च करते हैं, जबकि अमेरिकी नागरिक अपनी आय का केवल 10% या उस से भी कम हिस्सा खर्च करते हैं। इन विकासशील देशों में 2 बिलियन व्यक्ति बिना पोषण वाला भोजन ग्रहण करते हैं तथा विश्व में लगभग 165 मिलियन शिशु कुपोषण के शिकार हैं। इन देशों की प्रतिव्यक्ति आय 2 डॉलर या उस से भी कम है । लगभग 80% विश्व की जनसंख्या की प्रतिदिन की आय 10% से भी कम है। शिक्षा के अभाव में ज़्यादातर शारीरिक श्रम वाले कार्यों में अल्पविकसित देशों के व्यक्तियों की भागीदारी अधिक है । इन देशों में शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है। करोड़ों बच्चे ऐसे हैं जिन्हें शिक्षा का अवसर प्राप्त नहीं होता। इसकी कई वजहें हैं– गरीबी , विद्यालय का दूर होना, अपने परिवार के भरण पोषण हेतु कार्य करना आदि।2012 के आंकड़ों के अनुसार विश्व में 168 मिलियन बाल मजदूर हैं जो 5 से 17 वर्ष की आयु के हैं। दक्षिण एशिया में विश्व जनसंख्या का 51% भाग अशिक्षित है ।

इन देशों में अपराध , हिंसा दर बहुत अधिक है। वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन की रिपोर्ट के अनुसार 6.6% अफ्रीकी महिलाएँ तथा 37% दक्षिण पूर्वी एशिया के क्षेत्र की महिलाएँ शारीरिक व यौन हिंसा का शिकार होती हैं।

आधुनिक युग जहाँ मानव के लिए कुछ भी करना असंभव नहीं है वहीं विश्व के कुछ क्षेत्र इतने पिछड़े हुए हैं जहाँ आज भी बिजली पहुँच नहीं पाई है। लगभग 79% तीसरे विश्व की जनसंख्या आज भी बिजली की सुविधा से वंचित है। आधुनिक युग में बिना बिजली के रहना और हानिकारक है क्योंकि रोशनी इत्यादि के लिए लकड़ी को जलाने से उत्पन्न होने वाला धुआँ वायुप्रदूषण में बढ़ोतरी कर रहा है और यही 3.5 मिलियन व्यक्तियों की सालाना मृत्यु का कारण बन रहा है।

हालाँकि तीसरे विश्व के देशों की समस्याएँ बहुत गंभीर हैं और इन्हें पूरी तरह से समाप्त होने में कितना वक़्त लगेगा, इसका अनुमान लगाना बहुत कठिन है। पिछले कुछ दशकों में इन देशों की स्थिति बदली है और धीरे धीरे 'तीसरा विश्व' और 'विकासशील देश' जैसे शब्दों का महत्त्व समाप्त होता जा रहा है। भारत, चीन, ब्राज़ील जैसे देशों ने नवीन औद्योगीकृत देश के रूप में तथाकथित विकसित राष्ट्रों या पहली दुनिया के समक्ष ये प्रश्न खड़ा कर दिया है कि आर्थिक रूप से पिछड़े देशों को सामूहिक रूप से तीसरा विश्व या विकासशील देशों की संज्ञा देना कहाँ तक उचित है? विकासशील शब्द अपने आप में विकास की निरंतरता को दर्शाता है परन्तु यह तीसरे विश्व के सभी देशों पर लागू नहीं होता क्योंकि इन सभी देशों की अपनी अलग अलग समस्याएँ हैं। उदाहरण के तौर पर अफ्रीका में

एचआईवी/एड्स जैसी बीमारी का प्रकोप बहुत ज्यादा है। 'विकासशील देश' शब्द के प्रयोग की आलोचना भी होती है। इस शब्द के प्रयोग में एक विकसित देश की तुलना में एक विकासशील देश की हीनता अन्तर्निहित है और यह आर्थिक विकास के पश्चिमी मॉडल को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित करता है।

हाल ही में विश्व बैंक ने विकासशील देश शब्द का उपयोग समाप्त कर दिया है। उसने देशों के वर्गीकरण का एक नया तरीका अपनाने का फैसला किया है क्योंकि बैंक इस से विभिन्न देशों की आर्थिक संपन्नता को देखने का नज़रिया बदलना चाहता है। इसका लक्ष्य अलग–अलग देशों की आर्थिक स्थिति को ज्यादा सच्चाई के साथ दर्ज़ करना है। विश्व बैंक के मुताबिक बीते दशकों में कई देशों के हालत सुधरे हैं, जीवन की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। विकसित अथवा विकासशील देशों के मध्य सामाजिक विकास के मानकों का अंतर घटा है जो संपन्नता के आंकलन का मजबूत आधार होता है। पुराने वर्गीकरण के आधार सभी विकासशील देशों के सामाजिक विकास का मानक एक प्रकार का ही हो जाता है जो हकीकत से काफ़ी दूर है।

औपनिवेशिक सत्ता, राष्ट्रीय एकता

प्रतिभा गोंड, दीपा भारती
एम.ए.पूर्वार्द्ध, इतिहासविभाग)

हम सभी जानते हैं कि भारत विश्व का एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ की जनता की संस्कृति, बोल–चाल, भाषा, रहन–सहन, खान–पान, पहनावा, परम्पराएँ, धर्म यहाँ तक कि जीवन को प्रभावित करने वाले सभी प्रमुख पहलुओं मे काफी विभिन्नता है, लेकिन फिर भी भारत की अनेकता में ही एकता है और इसी एकता के बल पर भारत एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे विश्व मे अपनी पहचान बनाए हुए है। औपनिवेशिक सत्ता ने भारत की एकता को कैसे प्रभावित किया, यह तथ्य विचारणीय है।

भारत की एकता पर औपनिवेशिक शासन का बहुत विरोधाभासपूर्ण प्रभाव अर्थात् अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही प्रभाव पड़ा। अनुकूल प्रभाव यह हुआ कि औपनिवेशिक शासन ने भारत में उसकी प्राकृतिक, भौगोलिक सीमाओं (हिमालय से कन्याकुमारी तथा चटगाँव से खैबर तक) के अनुकूल एक दृढ़ राज्य की स्थापना की, भारत को राजनीतिक एकता प्रदान की, एक शासन , यातायात संचारसाधनों से उसे दृढ़ किया और उसकी सीमाओं पर भी अपने प्रभाव की स्थापना करके विदेशी आक्रमणों से उसे पूर्ण सुरक्षा प्रदान की । इससे पूर्व भारत राजनीतिक दृष्टि से विभक्त था। भारतीय शासक अपने को भारत का शासक नहीं मानते थे अपितु अपने धर्म, क्षेत्र अथवा जाति के आधार पर विभाजित थे और निरंतर अपने अधिकार और क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए एक दूसरे से लड़ते रहते थे। अंग्रेजों ने इन्हें पराजित कर, सहायक संधि द्वारा, हड़प नीति द्वारा, भौगोलिक एवं राजनीतिक रूप से एक भारत का निर्माण किया। मुगल शासन को आधार बनाकर अंग्रेजों ने समरूप कानून प्रणाली और प्रशासन की स्थापना की जो देश के दूर दराज के हिस्सों तक फ़ैल गया और एक संयुक्त प्रशासनिक शक्ति का सृजन हुआ ।

राष्ट्रीय एकता के लिए, राष्ट्रवाद की भावना को जागृत करने के लिए औपनिवेशिक सरकार ने रेलवे, सड़क तथा डाकतार की सुचारु व्यवस्था स्थापित की। रेलवे के विकास से

ग्रामों मे पृथक्करण का अन्त हो गया, एक स्थान से लोग दूसरे स्थान तक जाने लगे जिससे उन्हें पूरे भारत का ज्ञान हुआ और धीरे– धीरे वे राष्ट्रीय एकता से भी परिचित हुए ।

अंग्रेजी शासन ने पूरे भारत में एक समरूप शिक्षा पद्धति को लागू किया जिसके कारण भारत मे एक आंग्ल शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय हुआ । इस समुदाय ने राजनीति को देखने की नवीन दृष्टि विकसित की और राष्ट्रीय संदर्भ में अपने चिंतन को स्थापित किया। इससे भारत के अलग–अलग क्षेत्रों मे अलग–अलग राजनीतिक संस्थाओं का अविर्भाव हुआ। बम्बई में बम्बई एसोसिएशन, पूना सार्वजनिक सभा, मद्रास में मद्रास नेटिव एसोसिएशन, बंगाल में जमींदारी एसोसिएशन संचालित होने लगी थी। कुछ अंग्रेज अधिकारियों के सहयोग से इन छोटी – छोटी राजनीतिक संस्थाओं को संगठित करके राष्ट्रीय स्तर पर एक पार्टी के रूप मे अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना की गयी, जिसके नेतृत्व में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई ।

औपनिवेशिक काल में भारत में औद्योगिक क्रांति आरम्भ हुई, जिससे भारत में औद्योगिक कारखानों की स्थापना हुई और इसमें कार्य करने के लिए देश के सभी क्षेत्रों से लोग आने लगे जिस कारण उनके मध्य व्याप्त अन्धविश्वास नष्ट हो गया और राष्ट्रीय एकता का विकास हुआ ।

इसके अलावा औपनिवेशिक सरकार ने कुछ ऐसी नीतियाँ अपनाई जिनका भारत की एकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा । अपने स्वार्थ के लिए भारत का एकीकरण उपनिवेशवाद की विवशता थी । इसलिए एकीकृत करने के बाद अंग्रेजों ने ठीक इसके विपरीत प्रक्रिया अपनाई । अपने ही शासन द्वारा निर्मित भारतीय जनता की एकता से भयभीत होने लगे। उन्होंने सदाबहार साम्राज्यवादी सिद्धांत– 'फूट डालो, राज करो' के तहत भारतीय जनता के एक हिस्से को दूसरे हिस्से से लड़ाना आरम्भ कर दिया। उन्होंने जाति के विरुद्ध जाति, प्रान्त के विरुद्ध प्रान्त, वर्ग के विरुद्ध वर्ग जैसे– हिन्दू और मुसलमान तथा रजवाड़ों और जमींदार को लड़ाया तथा एक वर्ग को सहायता देकर झूठी सहानुभूति जताकर बहुत ही कूटनीतिक बुद्धि के साथ एक वर्ग को अपना समर्थक बना लिया तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध खड़ा करना शुरू कर दिया ।

औपनिवेशिक सरकार ने कांग्रेस का गठन तो किया पर उसे हिन्दू संस्था ही मानते रहे। उन्होंने मुसलमानों को राजनीतिक आन्दोलन से दूर रखने का पूरा प्रयास किया। केन्द्रीय

तथा प्रांतीय विधानसभाओं तथा स्थानीय इकाइओं में भिन्न–भिन्न जातियों के लिए स्थानों का संरक्षण सरकारी पदों, छोटी–बड़ी सेवाओं– सभी में धर्म के अनुपात से स्थानपूर्ति करना, इन सभी साधनों से उन्होंने भारत के स्वस्थ एवं एकीकृत राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन को विषैला बना दिया। उन्होंने भारतीय समाज की हर विभिन्नता (रंग, जाति, धर्म, नस्ल, भाषा) और राजनीतिक मतभेदों जैसे–प्रशासन संचालन को लेकर जिन्ना और नेहरु के मतभेद का उपयोग इनके बीच की दूरी को बढ़ाने के लिए किया। वे १६४७ से पहले भारत को भारत और पाकिस्तान में बाँटकर ही गये जो भारत के लिए एक स्थाई युद्ध का कारण बना हुआ है तथा आज भी भारत के लिए एक महत्त्वपूर्ण चुनौती बना हुआ है। भारत की एकता के लिए साम्प्रदायिकता, अलगाववाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद इत्यादि बाधाएँ औपनिवेशिक शासन की ही देन हैं ।

REALITIES OF ECONOMIC GROWTH AND GOVERNANCE IN UTTAR PRADESH : With Special Emphasis on Poverty and Unemployment

Shalini Shikha and Divya Singh
M.A. Previous, Department of Economics

"Economic growth without social progress lets the great majority of the people remain in poverty, while a privileged few reap the benefits of rising abundance"

- JOHN F. KENNEDY.

ABSTRACT

This paper investigates the underlying causes of poor economic growth of Uttar Pradesh, despite being endowed with relatively rich natural resources and being blessed with many social and cultural heritage. The paper revolves around the low skilled human capital, low quality education, messier health care facilities, weak institutions and poor infrastructure coupled with political instability and social conflict rooted in sectarian politics based on caste, class and ethnic division. And attributes the above reasons to the poor performance of state with respect to poverty, malnutrition, unemployment, discrimination and gender biasness. It covers the whole topic into several parts, the factor based on conceptual framework, structural factors, governance and institutional factors. Poor governance has influenced the general development scenario, so this paper specifically examines how growth strategies have evolved since the early 1990s, and compares the upfront scenario and reality of Uttar Pradesh "because whatever we see is not always true".

Key Words: Economic growth, human capital, poverty, unemployment, governance

INTRODUCTION

In his book “India grows at night”, Gurucharan Dasargues that the inefficiency of the state can be checked by a strong society, people must be empowered with a good quality of life. If people are busy fending for basic requirements of living, they will not be able to contribute towards a strong and vibrant society. Despite knowing these facts and a lot of social sector spending on health, education, sanitation, agriculture and housing then “why still Uttar Pradesh has a large number of people living below the poverty line?” Estimates released by the “planning commission for the year 2009-2010” revealed that Uttar Pradesh had 59 million people below poverty line and this estimates increased further. The state has been affected by respected episodes of cast and communal violence. In- spite of the fact that 33,200 policemen, 30,000 constable and 3,200 sub-inspectors are recruited per year (according to the survey reports of economic times), Uttar Pradesh has the highest number of crimes among any state in India but due to its high population, the actual per capita crime rate is low (according to national crime bureau yearly survey report). Uttar Pradesh has more than 45 universities including 5 central universities. But, irrespective of being educational hub the state has poor records in economic development, poor governance, organized crime and corruption have kept it amongst India's backward states. The state is blessed with intensive cultivation. The areas are fertile and have rich soil. The state has more than 32 large and small rivers, of them the Ganges, the Yamuna, the Sarasvati are main. The state is the second largest Indian state by economy. Its service sector comprises travel and tourism, hotel industry, real estate, insurance and financial consultancies. Hence the state have all those factors which contributes to high level of production, development and economic growth, but still the state is way too far behind where it should be now. The actual growth and development of the state is much more behind its expected growth and development.

LITERATURE REVIEW: Economic Theories Which Supports The Fact

That Development And Growth Is Nothing In Front Of Where It Should Be At Present.

1. Adam Smith, David Ricardo and other classical economists considered land, labor and capital as the key factor of production and the major contributor to a nation's wealth. They considered resource endowment as the primary basis of agricultural and industrial growth.
2. In contrast to classical economist, neo classical economists (such as Solow, Romer) consider human-made capital as the engine of economic growth. They argue that it is not the abundance of natural resources, but technology, investment, capital formation and savings that drive the economy. They contend that for sustained economic growth, productivity needs to be maintained through constant improvement of technologies and increased capital investment.
3. In contrast to the classical and neo classical views, structuralists think that comparative advantage of a nation is not its physical or even its human capital but rather its social structure. This is because the way power relations between different classes and identity groups are structured, regulates the access to productive resources and the way they are used, it also helps to determine access to specific skills, capacities and infrastructure for better utilization of human and physical capital.
4. Structuralists' maintain that sustained economic growth requires appropriate policies, institutions and technologies, which in turn depends on ideological coherence, bureaucratic instruments and political commitment.
5. Looking at political economy perspectives, Marx considered that the fundamental driving force of economic growth is continuous improvement of productive forces, which is influenced by the production relations. According to Marx, production relations constitute the economic structure of a society that is shaped by ideological, political

and social systems. This structure defines the mode of access to resources, exchange, and distribution of income and benefits. Political elites do not always support economic development when development erodes their authority and power and thus thwart economic growth.

Economic Growth during Plans:

During first 25 years of economic planning UP's economic growth was extremely low at around 2 to 2.5 per cent p.a., which was hardly above the states per capita income (census 2010-2011). However growth rate of U.P picked up in 5th plan period and arrived at par with National growth rate in 6th and 7th Plans. Unfortunately, since beginning of 1990's growth rate in U.P decelerated markedly and remained hardly around 3 per cent p.a. during 8th and 9th Plans. Arguably constant rate of growth of population of Uttar Pradesh along with the deceleration in the SDP growth rate since the 8th Plan period has led to a fairly low growth rate of state's per capita income of almost 1.7 per cent per annum as compared to the national per capita income growth rate of 4.2 per cent per annum. The per-capita income of Uttar Pradesh stands at a modest level of Rs. 23132 (2010) which is much below the national average of Rs. 44345. However, the state has posted significant growth in terms of raising its per capita income level. It has augmented from Rs. 14115 in 2006 to Rs. 23132 in 2011 with a growth of more than 60 per cent. Uttar Pradesh has one of the lowest per capita income amongst the Indian states. The per capita income of the states like Goa, Delhi, Haryana, Maharashtra are comparatively better then Uttar Pradesh. In addition to this the population growth rate of U P is above the national average and the gap between the two has tended to widen on account of a slow but gradual decline in the national population growth rate and constant population growth rate at the state level during the last three decades starting from 1971. The state has also poor condition of education, agriculture and governance which is discussed further in sub headings.

Poverty Scenario

Poverty reduction and employment generation has been the major goals

of the development policy in the state of Uttar Pradesh. This primary goal was sought to be achieved by taking the state at a high growth trajectory with a view to enhancing the purchasing power of the poor with endowment of land and non–land asset and generating employment opportunities. Uttar Pradesh has been making serious efforts in improving its poverty level; however the poverty level of the state stands at around 33 per cent, which is comparatively high as against national level of 27.5 per cent. However, the state has posted reasonably better performance amongst the eight states covered under Empowered Action Group (EAG) scheme. The state has implemented a large number of programmes and schemes to improve the socio-economic conditions of the poor. Uttar Pradesh has introduced Poverty and Social Monitoring System (PSMS) in 1999, to measure and monitor the progress in key areas related to poverty and living standards of the people of the state. In addition to this, Mukhya Mantri Mahamaya Garib Aarthik Yojna scheme has also been introduced by the state to provide cash assistance to the families living below BPL. Interestingly within the state, poverty has been more pronounced in rural areas (43 per cent) than in urban areas. In other words, not only poor people were more concentrated in rural areas, they were also relatively far below the poverty line, as reflected by poverty gap of 10 per cent than their urban counterparts (9 per cent). So the present condition of Uttar Pradesh can be shown in two parts, one in which government is making massive effort to reduce poverty and other in which the benefit and outcome is dissatisfactory.

Employment Scenario

Employment generation and income expansion is key to the development process of an economy. The unemployment rate in the state stands at around 8.2 per cent (2010) which is better in comparison to the national average of 9.4 per cent. Employment opportunities were continuously declining in public as well as private sectors in the state. However, there has been a marginal increase in private sector employment since 2007, but the organized sector revealed a

declining trend.

Table1: Employment in Uttar Pradesh

YEAR	PUBLIC SECTOR	PRIVATE SECTOR	TOTAL
1991	21.41	5.36	20.77
2001	17.58	4.66	22.24
2002	17.18	4.56	21.74
2003	16.92	4.51	21.43
2004	16.8	4.45	21.35
2005	16.5	4.38	20.88
2006	16.36	4.54	20.9
2007	16.3	4.83	21.13
2008	16.19	4.95	21.14
2009	16.15	5.06	21.21

Source: Annual Plan 2010-2011 U.P.

The backlog of unemployment at the beginning of the Annual Plan 2010-11 is about 31.50 lakh persons. Besides, persons who are engaged in agricultural activities but are not getting full time employment during the period would be about 112 lakh. MGNREGA **(Mahatma Gandhi National Rural Employment Generation Scheme)** was initially implemented in 22 districts of the State in the first phase during 2006-07 and it was extended to 39 districts of the State during 2007-08 in the second phase. During the third phase starting from 1 April 2008, MGNREGA was expanded to cover all the 71 districts of the State. MGNREGA basically demoralized the rural population who were involved in agricultural field, because it offers more marginal wage than agricultural sector. Some of those who were engaged in agricultural sector and having unsatisfactory results moved towards the program. But the program generated no effective outcomes. And when program ends those people ultimately get trapped into more chronic poverty.

Agriculture

Agriculture is one of the most significant sectors of the economy of Uttar Pradesh with 2/3rd of the workforce of the state dependent on agriculture for their livelihood. The state is the largest producer of food grain in India and offers diverse agro climatic conditions which are conducive for agricultural production. The major crops grown in the state are paddy, wheat, sugarcane, potato, mustard, groundnut, gram, pea and lentil. Uttar Pradesh has implemented —e-Choupal model to tackle the challenges faced by the sector through delivering of valued service to the customers. The state has allocated an amount of Rs. 4496 crore for agriculture and allied activities in the annual budget of 2012, which is 8.9 per cent more than the allocation made in 2011. Uttar Pradesh is also one of the major agro-exporting states in the country. In Eleventh Five-Year Plan the higher dependence of the state economy on the agricultural sector puts cap on its ability to share fully in the gains from the rapid growth of services and the manufacturing sector. Today the most rapidly growing sectors of the national economy are services and manufacturing, which have a lower share in state income. Moreover, even in these sectors the growth rate of the state economy is lower than that of the country as a whole. On the other hand, the slower pace of structural shift in favor of the non-agricultural sector implies that the agricultural sector remains over crowded due to declining size of holdings and low agricultural income per worker. As a result, the incidence of rural poverty remains high. UP has to, therefore, re-orient its strategy of development to promote faster growth of non-agricultural activities both in the rural and the urban areas.

Performance of Agricultural Sector in UP

Uttar Pradesh stands at first position at all India level in terms of food grain production. The state's food grain production has increased from around 43 million tonnes in 2001 to around 47 million tones in 2011.

The Table-2 highlights the performance of agriculture and allied sector in UP as against national economy from 1st five year plan to 10th

Five Year Plan.

Plan	Agriculture And Allied Sector(Per Cent)		Overall Economy(Per Cent)	
	UP	India	UP	India
1951-1956	1.86	2.71	2.12	3.60
1956-1961	1.48	3.15	1.75	3.95
1961-1966	(-)0.09	(-)0.73	1.58	2.32
1966-1969	0.62	4.16	0.32	3.69
1969-1974	0.94	2.57	2.23	3.25
1974-1979	5.23	3.28	5.70	5.30
1979-1981	2.54	2.52	4.11	4.10
1981-1990	2.69	3.47	5.70	5.80
1990-1992	5.42	1.01	3.14	2.47
1992-1997	2.70	3.90	3.20	6.80
1997-2002	0.80	1.90	2.00	5.60
2002-2007	2.10	1.10	5.30	7.70

Source: Planning Commission UP

Agriculture and allied sectors happen to be the key sector in UP and engages more than 65 per cent of workforce, most of whom are below poverty line. However, the performance of agricultural sector was far from satisfactory. It may be observed here that agricultural growth rate of the State economy from 6th Plan onwards continuously declined under various Five Year Plans and the same was less than the national average during 8th and 9th Plans. U.P. is undoubtedly one of the major food grains producing state with rice, wheat, chickpea, and pigeon pea as the major food grain crops. Sugarcane is another important crop whose cultivation has increased with the expansion of irrigated area (90 per cent). It may be noted here that the contribution of UP in food basket of the country is highest for lentil (47.25 per cent) followed by potato (46.39 per cent), sugarcane (37.68 per cent) and wheat (33.02 per cent) during

2006-07. However, U P occupies an average position in terms of per capita production and yield per hectare not-withstanding the fact that the state has the tremendous potential enhancing growth and productivity. With a large livestock population characterized by low productivity, this sector has vast potential, which can be optimally harnessed so as to increase its growth rate from present 4.5 per cent to the projected 10 per cent.

Education

India's largest state by population has the worst pupil-teacher ratio in India, the state has India's largest child population, but the poorest transition rate from primary to upper primary school and among the lowest learning outcomes in the country. According to census 2011, Uttar Pradesh's literacy rate of 69.72% is the eight lowest in India and as the first part of this series observed, literacy rates and learning outcomes are some of the lowest in the BIMARU states. In 2014-2015, Uttar Pradesh spent Rs 13,102 per elementary school student, including both primary school students (class 1 to class 5) and upper primary school students (class 6 to class 8) (according to economic and political weekly conclusion reports). This is higher than the all India spending of Rs 11,252 per student. Similarly, state expenditure on primary education has gone up 47% between 2011 and 2015, according to the state government's economic survey 2014-2015, but learning levels remains among the lowest in India. More children are at work in up than any other state, according to the calculation by the national commission for protection of child rights

Table3: **Shows the Worst Pupil Teacher Ratio Of Uttar Pradesh In India**

Indicator	Uttar Pradesh	All India
Literacy rate	69.72%	74.04%
Pupil teacher ratio	39.1	23.1
Transition rate from primary to upper primary	79.1%	90.14%

Source: Census 2011, Unified-District Information System for Education, 2015-16

Graph1: Outcome is way less than expenditure

TABLE-4: % CHILDREN IN STD III WHO CAN DO AT LEAST SUBTRACTION 2007-2014		
YEAR	**ALL INDIA**	**UP**
2007	42.4	25
2008	38.9	22.7
2009	39.1	20.5
2010	36.3	24.4
2011	30	22
2012	26.4	19.1
2013	26.1	25.5
2014	25.4	23.3

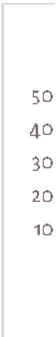

Source: Census 2011, Unified-District Information System for Education, 2015-16

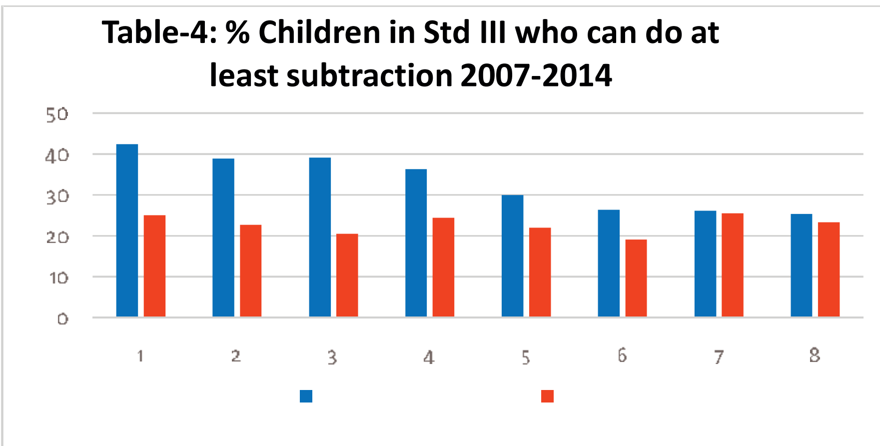

Source: Overview of Uttar Pradesh, Annual Plan Document

TABLE 5: % CHILDREN IN STD III WHO CAN DO AT LEAST SUBTRACTION, BY SCHOOL TYPE. 2007-2014				
YEAR	GOVT. SCHOOL		PVT. SCHOOL	
	ALL INDIA	UP	ALL INDIA	UP
2007	40.2	19.9	53.9	41.5
2008	35.4	14.2	51.8	38.8
2009	36.5	13.7	49.7	35.3
2010	33.2	16.5	47.8	37.7
2011	25.2	10.5	44.6	35.9
2012	19.8	6.7	43.4	32
2013	18.9	10.1	44.6	41.8

Table 5: % Children in Std III who can do at least subtraction by'school type 2007-2014

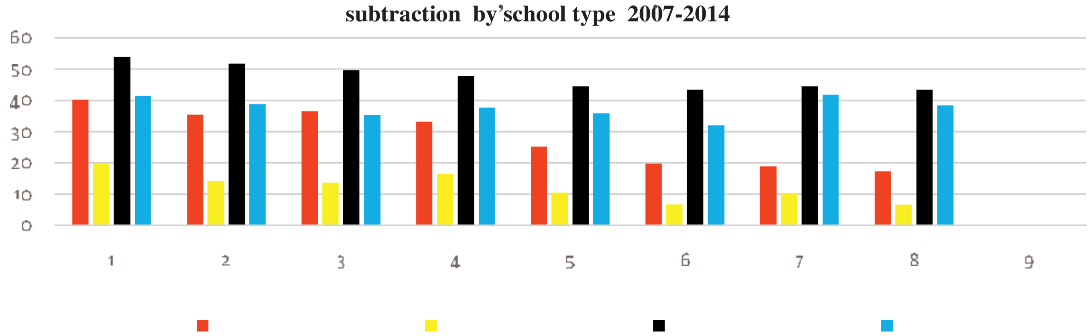

TABLE 6: % CHILDREN IN STD V WHO CAN DO DIVISION, BY SCHOOL TYPE. 2007-2014				
YEAR	GOVT. SCHOOL		PVT. SCHOOL	
	ALL INDIA	UP	ALL INDIA	UP
2007	41	25.9	49.4	41.4
2008	34.4	15.8	47.1	39.2
2009	36.1	16	46.2	32.3
2010	33.9	18.7	44.2	36.3
2011	24.5	12.1	37.7	33.4
2012	20.3	9.1	37.8	33.3
2013	20.8	11.2	38.9	42.3
2014	20.7	12.1	39.3	38.7

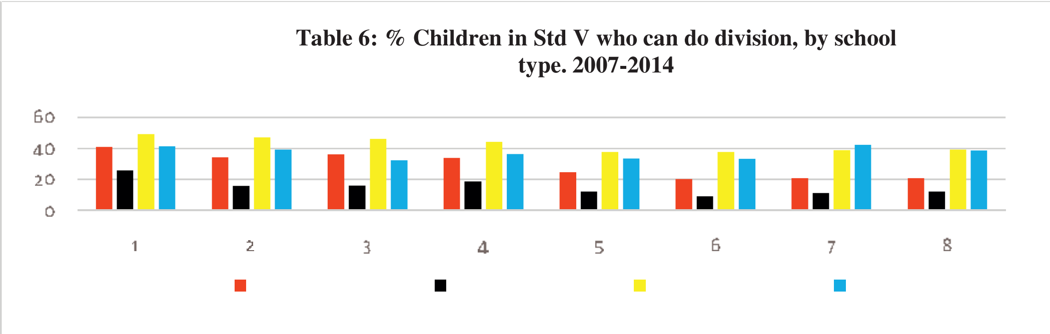

Source: Overview of Uttar Pradesh, Annual Plan Document

Investment Flows to the State

The most important reason of slow rate of growth in U.P. is the low level of public and private investment in the state. During the first four years of the Tenth Plan, the average private investment in Uttar Pradesh was about 25000 crores annually that was only half of what was expected during the Tenth Five Year Plan. Although large number of projects are likely to come in UP but all this requires liberal fiscal concessions and creating business friendly conducive socio economic political environment, so that entrepreneurs could be attracted to implement the improved level of investment. Therefore, in order to achieve the target growth rate, Uttar Pradesh must strive to improve the rate of actual implementation of private investment in the Eleventh Plan. Given table depicts the project investment scenario in U.P. It seems quite clear that high growth rate of domestic product and of per capita income at the All–India level is especially due to the fact that private investment has exceeded the stipulated target since 1997– 98. However, for Uttar Pradesh, there is an imperative need of channelizing private investment with a view to accelerating the growth rate of the state.

Table7: Project Investment in Uttar Pradesh during the Ninth and Tenth Plan Period (Rs. Crore)

Project investment	**1997-98**	**1998-99**	**1999-00**	**2000-01**	**2001-02**	**2002-03**	**2003-04**	**2003-04**	**2004-05**
Total outstanding investment	50680	48473	54614	53314	59589	69115	72541	82524	92211
under implementation	19808	15257	23525	23691	27900	24125	26584	28579	26529
Rate of implementation	39.08	31.48	43.08	44.44	46.82	34.91	36.65	34.63	28.77

Source: UP HDR 2006

Governance and Administration

The state have a large number of different minority groups and history of minority riots. Having this as a ground the state have various political parties which represents few caste, religion and groups example Smajwadi party, Bahujan Samaj party, Itteha-e-Millat, Ambedkar Samaj party etc. So the state after independence ruled by various caste biased political parties who favored to their own people the most, over the cost of overall growth and development. As a result administrative capacity of the state has weakened, so do the quality of governance, the rule of law, financial, management, and implementation of developmental plans and programs. Due to poor governance, physical and economic infrastructures such as roads, transportation and electricity, essential for attracting investment and pursuing other development efforts, have remained inadequate in Uttar Pradesh. Poor governance not only hampered the implementation of public funded programs and projects, but also increased the costs and risks to private business- for small entrepreneurs to large business houses-in the face of poor law and order and increased corruption. Growth becomes slow but poverty, crime, unemployment and degradation of natural resources increased.

Budget allocation: a real view

The Indian Constitution divides government functions and financial authority between the central and state governments through different mechanisms. Given table presents the per capita plan allocation to the states from the center in the 1st to 11th Five-Year Plan period (1951–2012). UP have been receiving less per capita allocation from the center for development expenditure than any other of the states. Until the 7th Plan (1990), UP received less than half the national average allocation. Although in the 8th Plan UP received slightly higher per capita resource allocations, they still received much less than the all-India per capita average. After the 8th Plan, allocations to UP were once again reduced. UP received two-thirds to two-fifths the all-India average. If the planned allocation is compared with the developed states such as Punjab, Haryana, Gujarat and Maharashtra, it is clear that UP have been systematically deprived of funds. In the 1st Plan, UP's planned allocation was less than one-fourth of Punjab. This pattern has continued for almost the entire plan period. Contrarily, Gujarat, Maharashtra and Haryana received per capita allocation of more than double that of UP during the entire plan period. Because UP have relatively undeveloped industry and services sectors, the fiscal resource base of the state is relatively small. Moreover, their low administrative capacity (coupled with the reliance on patronage politics) has weakened the ability of the state to collect revenue. UP was not even able to manage the matching funds required for centrally sponsored development programmes. The weak administrative capacity has also led to low utilization of development funds in UP. Moreover, since resource allocation partly depends on resource utilization capacity, UP received relatively low per capita allocations. This has resulted in a vicious circle starting from a low fiscal resource base, leading to low resource capacity to attract matching funds, low absorptive capacity, low investment, poor infrastructure, low human resources, leading once again to low private investment and low fiscal resource base. UP have been further disadvantaged by receiving relatively less externally funded

projects and financial resources including loans and grants from the center. The non-plan development allocations and grants received by the states from the center also follow the trend of the plan allocation where UP receive less than the national average. Up received two fifths of the national average of the grants. Low levels of financial grants and centrally assisted projects combined with low saving rates and low state revenues have kept UP from making the investments in physical and economic infrastructures necessary for economic development.

Table-8: Per capita plan resource allocation from the first to 11th five year plan, 1951-2012

States/Fiscal Year	Bihar	Uttar Pradesh	Gujrat	Maharashtra	Haryana	Punjab	All India	Bihar as a % of	Up as a % of
1951-1956	26.98	26.25	**Na**	**Na**	**Na**	136.26	109.28	24.69	24.02
1956-1961	41.85	34.34	**Na**	**Na**	**Na**	117.7	109.28	38.30	31.42
1961-1966	72.72	67.44	114.08	98.73	**Na**	204.77	170.75	42.59	39.50
1969-1974	97.79	113.02	179.13	186.23	236.84	224.35	302.12	32.37	37.41
1974-1979	61.04	84.11	120.89	138.04	180.6	152.32	452.31	13.50	18.60
1980-1985	475.6	550.33	1132.3	1025.75	1463.41	1218.5	1483.88	32.06	37.09
1985-1990	667.5	855.61	1657.4	1519.54	2027.97	1814.9	2402.88	27.78	35.61
1992-1997	1511	1480.96	2725.1	2294.92	3372.78	3189.3	2154.5	70.16	68.74
1997-2002	1805	2985.82	5983.1	4095.98	4848.44	5088.5	3667.53	49.22	81.41
2002-2007	2536	3596.87	7922.1	6890.59	4897.62	7709.5	5667.57	44.75	63.46
2007-2012	6800	10067	19000	14576	12337	11232	**Na**	**Na**	**Na**

Values are projected per capita outlay (rupees) Sources: plan documents, 1st-11th fyps, planning commission, government of India.

Discussion

Uttar Pradesh, the most populous state of India is well known for its

multi-hued culture, religion and variety of geographical land. It is endowed with natural wealth in abundance such as minerals, forests, flora and fauna. The state witness to numerous golden chapters of Indian history and has contributed to rich Indian mythology and tradition. It is garlanded by two pious river of Indian mythologies -Ganga and Yamuna. Uttar Pradesh is exquisite land of monuments of historic significance, renowned forts, museums, and enchanting scenes of natural beauty, wildlife sanctuaries and inspiring religious sites. Uttar Pradesh is primarily an agrarian economy with more than 60 per cent of the population depends on agriculture for their livelihood. The state is the largest producer of foo grain in India and offers a diverse agro climatic condition which is conducive for agricultural production. Uttar Pradesh is known for its highest contribution to nation's sugarcane basket. However, the state offers excellent investment opportunities for industrial development. The state is well known for its success in the green revolution and is the highest producer of food grains and sugarcane in the country, yet the poverty level in the state are very high in comparison to other states, and about 32 percent of its population lives below the poverty line (Kozel and Parker, 2003). The economic stagnation in Uttar Pradesh is manifested in terms of infrastructural bottlenecks, fiscal imbalances and unfavorable social sector parameters. The dismally low level of human development in Uttar Pradesh calls for enhancing human capabilities and competencies. It is worth mentioning that there was a meager improvement in education and health indicators in UP over the years. The value of HDI has also improved from 0.314 in 1991 to 0.388 in 2001, which is indicative of the improvement in health and education indicators in the state. However, the scenario of human development in UP is still quite dismal. Uttar Pradesh occupied the 13thposition in terms of HDI. In fact, gap between the country as a whole and the state on various development indicators was much less in the initial years of planning than what it is today. The state's economy, primarily being agricultural, is undergoing a gradual change with a decline in the share of agriculture and an increase in the share of the services sector.

Conclusion

The state faces all these problem of slow economic growth is mainly because of social and educational backwardness. The state also went through political mismanagement which encourage social inequality and corruption. Poverty, illiteracy, unemployment and social backwardness deter state from its development. But the main factor behind the slow growth rate is the ineffectiveness and failure of policy implications. The only way that takes UP to the height of development is the proper and effective implications of present policies. And that will happen only when we stop initiating new policies and make investments for current policies, irrespective of the fact that the policies may or may not be implied by current government. Because new chapter can only be effectively started if the old one is finished properly. Although having a suppressive past, now from 2014 onwards state really seen impressive developments. It is widely acknowledged that development is a function of investment. Investment is made in a state from various sources. The two major sources of such investment are public sector and private sector. The public sector investment includes the plan outlay of the state and the investment in central government undertakings. In recent plans, plan expenditure has increased noticeably from Rs.1, 582 in the Eighth Plan (1992-97) to Rs.1704 in the Ninth Plan and further to Rs.2528 in the Tenth Plan. The levels of per capita plan expenditure in UP have lagged behind the average plan expenditure of all states. In fact, the gap has increased in the recent plans. The state government has made a determined effort to increase its plan expenditure in recent years. Thus, annual plan outlay, which was only Rs.7250 crores in 2002-03 at the beginning of the Tenth Plan, went up to Rs.25000 crores in 2007-08. At the beginning of the Eleventh Plan i.e. for 2008-09 the plan outlay was Rs.35000 crores. Along with this the state government has also made a massive effort to ensure that plan outlays are fully utilized. The profile of the state shows enormous potential for growth and prosperity, however, remarkable regional disparities are emerging which demand for policy interventions. The balanced

economic growth will also ensure inclusive growth and development of the state. State now really needs to analyze its growth since beginning and factors that hinders development, so that now onwards plan and policies being executed will result satisfactorily.

Reference :

1. Dreze, J., & Gazdar, H. (Eds.). (2006). Uttar Pradesh: the burden of inertia. In Indian development: Selected regional perspectives (pp. 33–128). New Delhi: Oxford University Press.
2. Nelson, R. (1956). A theory of low-level equilibrium trap in underdeveloped economies. American Economic Review, 45(5), 894–908.
3. Planning Commission. (2008). Eleventh Five–Year Plan, 2007–12. Inclusive Growth, (Vol. 1). New Delhi: Government of India.
4. Planning Commission. (2012). Report of the working group on issues relating to Growth and Development at Sub-national Level for Twelfth Five–year Plan (2012–17). New Delhi: Government of India.
5. Solow, R. (1956). A contribution to the theory of economic growth. Quarterly Journal of Economics, 70(1), 65–94.
6. Economic political weekly (2016-2018)
7. Uttar Pradesh government official site: Up.gov.in
8. An overview of Uttar Pradesh, annual plan document
9. Review of literature on economic growth and unemployment by Bean and Pissarides
10. finance.up.nic.in
11. www.mospi.nic.in

कुम्भपर्व

अंशिका पाण्डेय
बी.ए. (ऑनर्स), तृतीयवर्ष, संस्कृतविभाग

कुम्भपर्व हिन्दू धर्म का महत्त्वपूर्ण पर्व है, जिसमें करोड़ों श्रद्धालु कुम्भपर्व–स्थल हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, और नासिक मे स्नान करते हैं। इनमें से प्रत्येक स्थान पर प्रति बारहवें वर्ष में महाकुम्भ मेले का आयोजन होता है।

खगोल गणनाओं के अनुसार यह पर्व मकरसंक्रांति के दिन प्रारम्भ होता है जब सूर्य और चन्द्रमा वृश्चिक राशि में और बृहस्पति मेष राशि में प्रवेश करते हैं। मकर संक्रांति को होने वाले इस योग को "कुम्भस्नानयोग " कहते हैं और इस दिन को विशेष मंगलकारी माना जाता है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि इस दिन स्नान करने से आत्मा को उच्च लोकों की प्राप्ति सहजता से हो जाती है। यहाँ स्नान करना साक्षात् स्वर्गदर्शन के तुल्य माना जाता है।

पौराणिक मान्यता जो कुछ भी हो, ज्योतिषियों के अनुसार कुम्भ का असाधारण महत्त्व बृहस्पति के कुम्भ राशि में प्रवेश तथा सूर्य के मेष राशि में प्रवेश के साथ जुड़ा है। ग्रहों की स्थिति हरिद्वार से बहती गंगा के किनारे पर स्थित हर की पौड़ी स्थान पर गंगाजल को औषधिकृत करती है तथा उन दिनों गंगा अमृतमय हो जाती हैं। यही कारण है कि अपनी अन्तरात्मा की शुद्धि हेतु पवित्र स्नान करने लाखों श्रद्धालु यहाँ आते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से अर्धकुम्भ के काल में ग्रहों की स्थिति एकाग्रता तथा ध्यान–साधना के लिए उत्कृष्ट होती हैं। यद्यपि सभी हिन्दू त्योहार समान श्रद्धा और भक्ति के साथ मनाए जाते हैं पर यहाँ अर्धकुम्भ तथा कुम्भपर्व के लिए आने वाले पर्यटकों की संख्या सबसे अधिक होती है।

कुम्भपर्व के आयोजन को लेकर दो–तीन पौराणिक कथाएँ प्रचलित हैं जिनमें से सर्वाधिक मान्य कथा देव–दानवों द्वारा समुद्र से प्राप्त अमृतकुम्भ से अमृत की बूँदें गिरने को लेकर है। इस कथा में महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण जब इन्द्र और अन्य देवता कमजोर हो गए तो दैत्यों ने देवताओं पर आक्रमण कर उन्हें परास्त कर दिया। तब सब देवता मिलकर भगवान् विष्णु के पास गए और उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया। तब भगवान् विष्णु ने उन्हें दैत्यों के साथ मिलकर क्षीरसागर का मन्थन करके अमृत निकालने की सलाह दी। भगवान् विष्णु के ऐसा कहने पर संपूर्ण देवता दैत्यों के साथ मिल करके अमृत निकलने के यत्न में लग गए।

अमृतकुम्भ के निकलते ही देवताओं के संकेत से 'इन्द्रपुत्र जयन्त' अमृतकलश को लेकर आकाश में उड़ गये। उसके बाद दैत्यगुरु शुक्राचार्य के आदेशनुसार दैत्यों ने अमृत को वापस लेने के लिए जयन्त का पीछा किया और घोर परिश्रम के बाद उन्होंने बीच रास्ते में ही जयन्त को पकड़ लिया । तत्पश्चात् अमृतकलश पर अधिकार पाने के लिए देव–दानवों मे बारह दिन तक अविराम युद्ध होता रहा।

इस परस्पर संघर्ष के दौरान पृथ्वी के चार स्थानों (प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन, और नासिक) पर कलश से अमृत की बूँदें गिर गयीं। उस समय चन्द्रमा ने घट से प्रस्रवण होने से, सूर्य ने घट के फूटने से, गुरु ने दैत्यों के अपहरण से एवं शनि ने देवेन्द्र के भय से घट की रक्षा की। अमृतप्राप्ति के लिए देव–दानवों में परस्पर बारह दिन तक निरन्तर युद्ध हुआ था। देवताओं के बारह दिन मनुष्यों के बारह वर्ष के तुल्य होते हैं। अत एव कुम्भ भी बारह होते हैं। उनमें से चार कुम्भ पृथ्वी पर होते हैं और शेष आठ देवगण ही प्राप्त कर सकते हैं, मनुष्यों की वहाँ पहुँच नहीं है।

जिस समय चन्द्रादिकों ने कलश की रक्षा की थी, उस समय की वर्तमान राशियों पर रक्षा करने वाले चन्द्र–सूर्यादिक ग्रह जब आते हैं, उस समय कुम्भ का योग होता हैं, उसी वर्ष उसी राशि के योग में, जहाँ –जहाँ अमृत की बूँदें गिरी थीं, वहाँ–वहाँ कुम्भपर्व होता है।

कुम्भ पर्व सनातन आस्था का प्रतीक है। शास्त्रों में कुम्भपर्व की महिमा का गुणगान करते हुए इसके स्नान को समस्त पापों का नाश एवं अनन्त पुण्य प्रदान करने वाला बताया गया है। स्कन्द पुराण में वर्णित है–

सहस्रं कार्तिकस्नानं माघस्नानशतानि च।

वैशाखे नर्मदा कोटिः कुम्भस्नाने तत्फलम्।।

अर्थात् एक हजार बार कार्तिक मास में गंगा में स्नान करने से, सौ बार माघ में संगम–स्नान करने से, वैशाख में एक करोड़ बार नर्मदा–स्नान करने से जो पुण्यफल अर्जित होता है वह कुम्भ में केवल एक बार स्नान करने से प्राप्त होता है। सामान्यतः कुम्भ का अर्थ घड़े से होता है परन्तु इसका तात्त्विक अर्थ कुछ और ही है। कुम्भ हमारी संस्कृति का संगम है। वस्तुतः गंगा एक जीवनधारा है। जिसमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का अमृत संगम छिपा है। गंगा में डुबकी लगाने से मनुष्य को जीते जी मोक्ष की प्राप्ति होती है। तभी तो कहा गया है– **'गङ्गे तव दर्शानात् मुक्तिः'।**

प्रेमचन्द की कहानियों में जीवन की सच्चाई

रूपम कुमारी
बी.ए. ऑनर्स, द्वितीयवर्ष

हिन्दी साहित्य के कथासम्राट् मुंशी प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई 1880 ई. में बनारस जिले के लमही गाँव में हुआ। प्रेमचन्द पहले खुद कहानी बने और बाद में कहानीकार। ये मूलतः कृषक जीवन के रचनाकार थे। उनको कई नामों से जाना जाता है। इनमें नवाब राय घर के पुकारने का नाम, धनपत राय उनका सर्टिफिकेट का नाम, प्रेमचन्द साहित्यिक नाम, अफसाना मोहम्मद उर्दू का नाम तथा बंबूक इनके दोस्तों द्वारा पुकारा गया नाम। प्रेमचन्द का प्रिय खेल गुल्ली–डंडा था।

प्रेमचन्द का साहित्य अपने समय, समाज और ऐतिहासिक स्थितियों से गहरे जुडा है। वे अपने काल और परिवेश से जुड़े हुए लेखक हैं, इसलिए उनके साहित्य में जिस युग–बोध का आभास हमें होता है, वह आज भी परिलक्षित होता है।

प्रेमचन्द ने रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का चिट्ठा भी हमारे सामने खोला है। उन्होंने **कर्मभूमि** में धार्मिक पाखण्ड का रहस्योद्‌घाटन किया है। प्रेमचन्दसाहित्य सामाजिक रूढ़ियों और परम्पराओं, अन्धविश्वासों तथा टोना–टोटकों पर गहरा प्रहार करता है।

प्रेमचन्द के पात्र आज भी समाज में जीवन्त तौर पर देखे जा सकते हैं। कमलाचरण **(वरदान)** अपने धनवान् बाप की सम्पत्ति का नाजायज उपयोग करता सरेआम दीख जाता है। वहीं महन्त रामदास **(सेवासदन)** आज भी समाज में जहाँ–तहाँ मौजूद है जो समाज में शोषण करता है, हत्या करवाता है, मन्दिरों में वेश्यावृत्ति करवाता है और रामनामी दुपट्टा ओढ़कर वासनामयी दृष्टि से महिलाओं को देखता है। **प्रेमाश्रम** का ज्वाला सिंह मजिस्ट्रेट का चपरासी गाँव वालों से बेगार वसूलते आज भी समाज में नजर आ जाता है। **प्रेमाश्रम** का ज्ञानशंकर

आज भी जीवित है जो सम्पत्ति और जायदाद की लालच में विधवा गायत्री पर डोरे डालता है। भक्ति का छद्म वेष दिखलाता है। अपने भाई से इस कारण चिन्तित रहता है कि वह पिता की सारी सम्पत्ति के आधे का हकदार है। प्रेमाश्रम का गौस खां जो किसानों पर जुल्म और कहर ढाता था, उसका प्रतिरूप आज भी समाज में देखने को मिलता है। आज भी प्रेमचन्द का पात्र दरोगा दयाशंकर **(प्रेमाश्रम)** धाँधली मचाते हैं, झूठे मुकदमे और अभियोग बनाते हैं। किसानों, गरीबों तथा दलितों से नाजायज मुचलके वसूलते हैं। मसलन **रंगभूमि** का सूरदास सड़क पर भीख माँगते देखा जा सकता है जिसकी भूमि पर उसके विरोध करने पर भी कारखाना खुल जाता है। यही नहीं, अहिंसा का अनन्य उपासक सूरदास क्या हिंसा का शिकार भी होता है? **गबन** का मध्यवर्गी युवक रमानाथ, देवीदीन खटिक भी समाज में मौजूद है। आज भी हमारे आसपास अनेक सामाजिक विसंगतियों का शिकार होकर तिल–तिल कर मरता हुआ होरी दिखलाई पडता है। समाज में घीसू, माधव और हलकू जहाँ–तहाँ मिल जाते हैं। प्रेमचन्द ने नारी–उत्पीड़न, सामाजिक समस्या, दहेज की समस्या आदि को अपनी कहानी और उपन्यासों के माध्यम से चित्रित किया तथा समाज के यथार्थ को सामने लाया। समाज में आज भी दहेजप्रथा के कुपरिणाम देखने को मिलते हैं, अनमेल विवाह होते हैं, पाखण्डियों के जत्थे के जत्थे घूम रहे हैं, दालमण्डी आबाद है, सच्चरित्र व्यक्तियों की दुर्गति समाज के हाथों होती है, पुलिस का जुर्म, अत्याचार और अन्याय किसी से छिपा नहीं है, रिश्वत का बाजार गर्म है, मिथ्याभाषी नेताओं की तादाद प्रतिदिन बढ़ रही है। तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्द ने जो समस्याएँ उठाई थीं या जो विकृतियाँ उस समय समाज में थीं, वे आज भी उसी रूप में, बल्कि उससे भी अधिक विकराल रूप में दिखलाई पडती हैं, अर्थात् प्रेमचन्द आज और भी प्रासंगिक हैं।

प्रेमचन्द ने अपने जीवन की सच्चाई को ही अपनी कहानी में मूर्त रूप दिया। वे खुद कहते हैं कि "सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता। जिसकी आत्मा जितनी विशाल है, वह उतना ही बड़ा महापुरुष है।" अपनी कहानियों में गरीबी और किसान की जिंदगी को बखूबी बयाँ करने वाले उपन्याससम्राट् मुंशी प्रेमचन्द का उपन्यास **सेवासदन** एक साहित्यिक धरोहर है। वह समाज की तात्कालीन सामाजिक समस्याओं, दहेज, बेमेल विवाह, घूसखोरी आदि समस्याओं पर आधारित है। यह दहेजसमस्या पर लिखा गया मार्मिक उपन्यास है जिसमें एक

दारोगा की सुमन बिटिया सुमन बाई बन गई है। सचमुच, हम कह सकते हैं कि मुंशी प्रेमचन्द ने अपने जीवन की सारी सच्चाई को अपनी कहानियों तथा उपन्यासों के माध्यम से वर्णित किया है तथा आज के समय में भी प्रेमचन्द की कहानियों तथा उपन्यासों से जुड़े पात्र मौजूद हैं। प्रेमचंद सिद्धांत के पुजारी थे। प्रेमचन्द की पहली रचना **सोजे वतन** थी जो अंग्रेजों द्वारा जब्त कर ली गई थी। प्रेमचन्द ने आदर्श का सपना देखा। साम्राज्यवाद और सामन्तवाद से जूझे और उन्होंने अपनी अन्तःदृष्टि से जिस कहानी, उपन्यास की रचना की, वह अतुलनीय है। प्रेमचन्द का **सवा सेर गेहूँ** कहानी शोषक और शोषित वर्ग की कहानी है। यह कहानी सामन्तवाद की प्रवृति को उभारने में कारगर साबित हुई है। 19वीं सदी में प्रेमचन्द द्वारा लिखित कहानी व उपन्यास आज भी प्रासंगिक हैं। भारत जैसे लोकतान्त्रिक देश में आज भी अपाहिजों के साथ सामान्य जैसा व्यवहार नहीं किया जाता है। आज भी समाज में दहेज के कारण स्त्रियों पर अत्याचार अनवरत जारी है। उनकी कहानी **सद्गति** में भी दलित के साथ हो रहे दुर्व्यवहार को चित्रित किया गया है।

प्रेमचन्द की उक्ति "मैंने अपने सिद्धान्तों को सदैव ऊँचा और पवित्र रखा है। दौलत के पुजारी तो गली–गली मिलेंगे। मैं तो सिद्धान्त का पुजारी हूँ" को हमेशा अपने जीवन में उतारने का काम किया। वे कहते हैं कि "दिल से समाज की सेवा करेंगे तो मान और प्रसिद्धि हमारे पाँव चूमेगी"। यह अतिश्योक्ति नहीं होगी कि आज भी प्रेमचन्द हमारे लिए अविस्मरणीय हैं। वे सच्चे रूप से किसानों, मजूदरों, दलितों, नारियों, उपेक्षितों के साथ हो रहे शोषण के सच को उजागर करने वाले जीवन्त रचनाकार हैं। आजीवन कलम चलाते हुए हिन्दी साहित्य के महान् कथासम्राट् प्रेमचन्द ने 8 अक्टूबर, 1936 को बनारस के रामकटोरा में अन्तिम साँस ली।

शोषित और शोषक

प्रियदर्शी गोस्वामी
बी0ए0 (ऑनर्स), प्रथमवर्ष, राजनीतिशास्त्र

जब मचलता है कोई लेख
या लेती है जन्म कोई कविता
अन्तर्मन के धरातल पर
कि रचित करूं
मैं किसी सफल नायक की कहानी
कहीं किसी अवशेष में,
शेष बचती हूँ
और शान्त हो जाती हूँ।
कैसे न करूँ सम्मिलित उन्हें
जो धकेल दिए जाते हैं
किसी वीरान तट पर
प्रवास के लिए।
उसने भी तो लड़ी होगी
एक बेजोड़ लड़ाई
अपनी शाख को बचाने के लिए
अपने को मह जो शान्त कर लेता है
और देता है तुम्हें वजह
ताकि तुम मना सको उत्सव।
कैसे रहा जाय अविचलित
जय और पराजय में?
जो हाशिए पर धकेल दिये जाते हैं
वे महान् ही तो हैं,
जो देते हैं अपनी जीत की आहुति
जीवन रूपी यज्ञ में।
ताकि जी सके बिना अकुलाहट के वह
जो उनका नायक है।
मांस के लोथड़ों को
आराम देने से मिल सके फुर्सत
तो उन्हें भी आजादी दे दो
दे दो रोटियाँ उन्हें भी
जो तुमने हलक तक ठूँसने के बाद भी
बन्द कर रखा है अपनी मुट्ठियों में
ताकि फिर से कायम हो सके विश्वास
तुम्हारी खोखली व्यवस्था में।
स्थापित करो उस सत्य को
जिससे परिभाषित हो सके वह
जो एक बीच की कड़ी है
शोषित और शोषक के।

युवा भारत – उद्यमी भारत

सोनम उपाध्याय
बी0ए0 (आनर्स), द्वितीय वर्ष

भारत वर्ष एक जनशक्ति से युक्त देश है। जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान आता है। इस प्रकार भारत एक विशाल जनशक्ति वाला देश है। उसमें भी यह युवाओं का देश है क्योंकि वर्तमान समय में भारत में युवाओं की संख्या अत्यधिक है, अतः भारत देश का भविष्य युवाओं के हाथ में है। वे अपने देश को सम्पूर्ण विश्व में शीर्ष स्थान पर ला सकते हैं यदि उनका सही मार्गदर्शन किया जाये, उन्हें शिक्षित कर आत्मनिर्भर बनाया जाये। स्वामी विवेकानन्द जी भी इस युवाशक्ति को पहचानते थे और वे अपने देश के उत्थान के लिए उन्हें सदैव प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया करते थे। वर्तमान समय में गलत शिक्षाप्रणाली की वजह से कोई भी युवा छोटे–छोटे काम तथा खेतों में काम करना पसन्द नहीं करता है। आज के पढ़े लिखे नौजवान सिर्फ दफ्तर में बाबू ही बनना पसन्द करते हैं या फिर कोई और ही ऊँचा पद प्राप्त करना चाहते हैं। वे इन छोटे–मोटे कार्यों को करने में हीनता का अनुभव करते हैं। इसलिए आज बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा है और प्रतिवर्ष लाखों युवा उच्च शिक्षा प्राप्त कर निकलते हैं किन्तु वे बेरोजगार घूमते हैं। अतः हमारी शिक्षा नीति इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे कि युवाओं में यह सोच उत्पन्न हो कि कोई भी काम–काज छोटा या बड़ा नहीं होता बल्कि उसको करके मनुष्य उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने बहुत सी ऐसी योजनाओं, कार्यक्रमों को लागू किया है जिससे हर कोई रोजगारयुक्त और आत्मनिर्भर हो सके। इस प्रकार देश भी आत्मनिर्भर होगा। यही कारण है कि उन्होंने ''मेक इन इण्डिया'', ''मेड इन इण्डिया'' का नारा दिया । सही शिक्षानीति के द्वारा युवाओं में सुविचार पैदा कर भारत की युवा पीढ़ी को उद्यम के प्रति आकर्षण पैदा कर भारत देश को एक उद्यमी देश बनाया जा सकता है जिससे बेरोजगारी की समस्या का भी समाधान हो सकता है और भारत देश विश्व में अग्रणी देश हो सकता है। वर्तमान समय में आवश्यकता है छोटे–बड़े सभी प्रकार के उद्योग–धन्धों की स्थापना करने और जनशक्ति का इन कार्यों में उपयोग करने का जिससे महँगाई का निराकरण हो सके। यदि सभी प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन अपने ही देश में होने लगे तो भारत देश का आयात

प्रतिशत घटाया जा सकता है। इस प्रकार महँगाई, बेरोजगारी और अन्य प्रकार की जो समस्याएँ हैं, उन्हे पर्याप्त सीमा तक कम किया जा सकता है। आवश्यकता है युवा सोच को बदलने की। भारत देश में युवाओं की कमी नहीं है किन्तु उनके अन्दर परिश्रम करने की भावना लगातार घटती जा रही है। यदि यही युवाशक्ति अपनी सोच को सही दिशा में लगाये और परिश्रम के प्रति उसका लगाव हो तो भारत एक उद्यमी देश बन सकता है। महात्मा गाँधी जी ने भी यह आह्वान किया था और लोगों को, जन शक्ति को कर्म करने के प्रति प्रेरित किया था। उन्होंने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया तथा खुद आत्मनिर्भर बनने का सन्देश दिया। दाण्डी यात्रा कर नमककानून का विरोध कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया। इस प्रकार उन्होंने उद्यमी बनने का सन्देश दिया। भारत देश को उद्यमी भारत बनाने में सभी को आगे आना चाहिए, विशेषकर युवाओं को। अपने देश को उन्नत एवं सर्वोच्च बनाने के लिए सभी वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए। इस प्रकार भारत विकासशील देश से विकसित देश हो जायेगा।

भारत देश को विशाल जनशक्ति से संगठित कर, संसाधनों से युक्त कर आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है तथा अच्छी शिक्षाप्रणाली द्वारा युवाशक्ति का सही उपयोग कर अग्रणी एवं एक उद्यमी देश बनाया जा सकता है।

The Hamartia of Social Networking Sites

Anupriya Rai
BA (Hons), First Year

Oedipus rightly didn't know that he killed his father and married his mother, the incident referred to by **Aristotle** as `hamartia` in **Sophocles**` classical tragedy. Though not strictly in literal sense, the vices or disadvantages of social networking sites are` hamartia` of the Greek theorist, I presume to undertake here-upon to underline the `flaws` of the social networking sites (SNS).

May I start my text in Stevensonian style : It is certain that much may be judiciously argued in favour of the SNS. There are many more to be said against it and that is what on the present occasion, I have to write. There are always the pros and cons of a matter and so is here with the usage of social networking. I firmly believe that the impact of social networking has been of little good than the great harm for our society. Social networking is relatively a new phenomenon of information technology. To me it is ghastly advancement, which claims that it has opened the windows of globalization and has made the life easier, more comfortable and enjoyable, Though it has affected our vocations and avocations in almost all walks of life, honestly speaking, I truly wish that tools such as ; the i-phones, laptops, i-pads and tabs etc had not been invented.

I record here the inevitable impact of social networking and put forth my petition against its growing menace. It needs only to open your eyes and ears and one may realize that the world of social networking is not a world of reality. On the contrary, it is a world of romance- a sheer make-believe world of fantasy.

I firmly stand by the observation of **George Bernard Shaw** who vehemently decries the vague romanticism. Of course diving deep into the world of social networking is equivalent to sitting like **the Lady of Shallot**, peering through a mirror with our back turned on bustle and glamour of reality.

Those who proclaim that social networking has done great job in removing gaps of time and space and created a world-wide connectivity that runs 24 X 7, forget that our society has undergone a metamorphosis, turning less humane and more mechanic. Let me not admit that face book, instagram, u-tube etc do serve to strengthen the fabrics of human society any way. These are not more than `bloodless substitute of life`.

One may remind here of **Dr. Fastus** who pledged his soul to quench his thrust for knowledge. And whether did he reach finally ? The satanic anguish engulfed his existence completely. In a world of fake ids and social networking accounts aren`t we doomed to move towards deadly falls where no rescue means seem to help. And what to talk of the disadvantages of social networking sites. It has started playing havoc with human life and society. The moment one clicks on any of the sites (SNS), he/she signs a bond to lose his privacy and identity. Sitting with his/her desktops, i-phones or laptops the poor **Don-Quixote** foolishly entertains his futile exercises to win over the world. A pound foolish and a penny wise, the fellow doesn`t count what valuable time he ventures to waste through the nonsensical apparatus.

To those singing songs in favour of SNS, I have to say that when you start to drive your car on the highways, you often forget to check the speed and movement. You also very often cross the limits and feel crazy in driving faster and faster. So happens when one starts using SNS on internet, there are no check and balance, no restrains, nor even any measure of moderation. Beware and mark friends, all roads do not lead to Rome. The territory of social networking is not confined to fb, twitter or instant messaging but it also provides an easily accessible thorough-fare to the world of doldrums where the most inappropriate contents like fake ids and pornography reign supreme.

And who are, in our society to bear the brunt – we, the teenagers, the young and old alike and the females in particular are most vulnerable to the horrible consumerism of social networking. Now I conclude here, that the excessive and uncontrolled use of social networking sites has created a world of cultural anarchy. Its disastrous impact on society can well be characterized by idleness, alienation and productivity – where we are bound to sink beneath any level of immorality and untruthfulness.

दहेज की बोली

प्रचेता सिंह
बी0ए0द्वितीय वर्ष

लाखों बरबाद हो गये,
इस दहेज की बोली में।
कितनी कन्याएँ बेचारी,
बैठ न पाईं डोली में।

कितनों ने अपनी कन्या के,
पीले हाथ कराने में।
कहाँ–कहाँ पर मस्तक टेके,
आती शर्म बताने में।

जिस पर बीते वही जानते,
शब्द नहीं कुछ कहने के।
गहने, खेत, मकान, बेचते,
अब तक अपने रहने के।

लड़के वाले मूल्य बढ़ाते,
उन्हें सम्पदा प्यारी है।
लड़की वालों की गर्दन पर,
चलती सदा कटारी है।

सबको दुःख सहना होगा,
जब एक दिन ऐसा आयेगा।
पापी यह दहेज दानव,
सबको ही खा जायेगा।

कथन सत्य है, बुरा न मानो,
बचे न पैसे झोली में।
लाखों बहुएँ जलीं, घर जले,
इस दहेज की बोली में।

ভাববার কথা

ড: বিন্দু লাহিড়ী

বাংলা বিভাগ

ভাষা অভিব্যক্তির মাধ্যম। ভাষাবিদদের মতে অবশ্য ভাষা কেবল অভিব্যক্তির মাধ্যমই নয় বরং সামাজিক নিয়ন্ত্রক বলে পরিগণিত হওয়া উচিত। কারণ সামাজিক আবশ্যকতা এবং ব্যবহারিক প্রয়োজনীয়তার পূর্তির উপকরণও ভাষা। তাই একথা স্বীকার করতে হবে ভাষার পরিসর বিস্তৃত। ভাষা যেমন ভাবে চিন্তনের সাধন, জ্ঞানের দ্বার, যুদ্ধের অস্ত্র ঠিক সেই ভাবেই ব্যক্তিত্বের বিকাশের প্রধান সাধনও বটে। তাই ভাষা হল বিকাশের পরিচিতির প্রধান উপকরণ। সাধারণত আমরা ভাষা ও সাহিত্যকে এক করে ফেলি কিন্তু ভাষা ও সাহিত্যের ভূমিকা একেবারেই পৃথক। বলা বাহুল্য ভাষার জন্য সাহিত্য নয়, সাহিত্যের জন্যই ভাষার প্রয়োজন। কারণ ভাষা অবলম্বন করেই সাহিত্যিক সাহিত্যের বিভিন্ন আঙ্গিকের উপর কাজ করেন। ভাষা অবলম্বন করেই ভাব-কল্পনা মানস জগতে একটি চিত্র অঙ্কন করে ও প্রকাশ করতে সক্ষম হয়। তবে ভাষার প্রধান গুরুত্বপূর্ণ কাজ হল দেশের সামাজিক, রাজনৈতিক ও আর্থিক প্রগতির প্রয়োজনীয়তা মেটানো। স্বাধীন ভারতবর্ষের জন্য একথা যেভাবে প্রাসঙ্গিক পরাধীন ভারতবর্ষেও তার প্রাসঙ্গিকতা ততটা বা তার থেকে বেশী ছাড়া কম ছিল না। তাই ত আমরা শুনতে পাই ১৮৩৫ খ্রীষ্টাব্দেতে মেকালের ভারতীয় সমাজ ও শিক্ষানীতির পরিবর্তনে আবশ্যকতা। মেকালে বলেছেন—I have travelled across the length and breadth of India and I have not seen one person who is a begger, who is a thief such wealth I have seen in this counrty. Such high moral values, people of such calibar that I could not think we would ever conguer this country unless we break the backbone of this nation which is her spiritual and cultural heritage and terefore I propose that we replace her old and ancient education system, her culture. For it the Indians think that all that to foreign and is good and greater then their own. They will lose their selfsteam, their native culture and they will become what we want them a treely dominaled nation. (Lord Mecaly Address to the British Parliament on 2nd Feb. 1835)

ও পরে১৮৫৭ খ্রীষ্টাব্দের স্বাধীনতা সংগ্রামের যুদ্ধে ভারতবর্ষের বিভিন্ন প্রান্তকে এক হয়ে যুদ্ধ করার আহবান।

আসলে ইষ্ট ইন্ডিয়া কম্পানী যখন ভারতবর্ষে কাজ আরম্ভ করে ভারতীয় ভাষার অনভিজ্ঞতার ফলে তাদের ব্যবসা বাণিজ্যে শাসন চালাতে গিয়ে সাধারণ মানুষের সঙ্গে কাজ কর্মে যে অসুবিধা অনুভব

করে তার থেকে নিস্তার পাওয়ার জন্য এখানকার ভাষার প্রয়োজনীয়তাকে তারা অনুভব করে এবং নানা রকম পরীক্ষণ করার পর ভাষার স্বরূপ বা ব্যাকরণ নির্মাণ করার জন্য সংস্কৃত ভাষার অবলম্বন করে। এই ভাষার স্বরূপ নির্ধারণের মূলেই আছে ভুল বা সামন্তিক মানসিকতার পরিচয়। আরম্ভ হয় ভাষার প্রতি দোআঁচলা ব্যবহার সামাজিক দম্ভ রূপে যে সাধারণ মানুষ এতদিন মঙ্গল কাব্য বা নানান দেব-দেবীর পাঁচালী কীর্তন করত সে পড়তে বা শুনতে আরম্ভ করল করুণা ও ফুলমনী গল্প। অর্থাৎ ইংরেজরা বেশ বুঝে নিয়েছিল এই দেশের উপর বহুদিন রাজ্য করতে হলে এর ভাষা ও ধর্মের উপর প্রহার এবং কব্জা করতে হবে। রবীন্দ্রনাথ তাঁর 'ভাষার কথা' প্রবন্ধে বলেছেন—''অল্প মূলধনে ব্যবসা আরম্ভ করিয়া ক্রমশ মুনাফার সঙ্গে-সঙ্গে মূলধনকে বাড়াইয়া তোলা ইহাই ব্যবসার স্বাভাবিক প্রণালী। কিন্তু বাংলা গদ্যের ব্যবসা মূলধন লইয়া শুরু হয় নাই। মস্ত একটা দেনা লইয়া তার শুরু। সেই দেনাটা খোলসা করিয়া দিয়া স্বাধীন হইয়া উঠিবার জন্য তার চেষ্টা।

একথা 'সবুজ পত্র' পত্রিকার তৎকালীন সম্পাদকের অনুরোধের পর যখন তিনি চলতি ভাষায় লেখা আরম্ভ করেন সেই সময় স্বীকারোক্তি স্বরূপ লেখা প্রবন্ধ 'ভাষার-কথা' প্রবন্ধে বলেছেন। রবীন্দ্রনাথ ঠাকুরের ভাষার কথা প্রবন্ধে একথা বলার একটা বড় কারণ আছে। বাংলা ভাষা বিশ্লেষণ করলে বোঝা যায় বাংলার প্রাচীন যে সমস্ত লোক গীতি, প্রবাদ, ছড়া, ধাঁধা, চর্যাগীতি, কীর্তন, পাঁচালি ইত্যাদি আছে সেখানে সমস্ত জাতি, ধর্ম, সংস্কারের প্রতি একটি বিশেষ মানবিক আকর্ষণ প্রতিফলিত হতে অনুভব করা যায়। যার ফলে একটি চিরন্তন সংস্কৃতির রূপ পরিগ্রহ করেছে বাংলা সংস্কৃতি। বাংলার ইতিহাসে বহুবার দেখা দিয়েছে অবক্ষয় কিন্তু আবার ঘটেছে পূণর্জন্ম ফলে আবার করে বাংলা হয়েছে সমৃদ্ধ, সম্পন্ন ও সুসংস্কৃত। আসলে এই ভাষার মূলে আছে এক বিশাল সংস্কার যার পরিণামে গড়ে উঠেছে এক সংস্কৃতি। সংস্কৃতি তো আর একদিনের ব্যাপার নয় যে মিটে যাবে। সংস্কৃতি হল genetic ব্যাপার। মানুষের মৃত্যুর পরেও কিন্তু তার Jeans এর মাধ্যমে তার genetic বৈষ্টিগুলি বংশ পরম্পরায় থেকে যায় যেগুলিকে আমরা বহুক্ষেত্রে লক্ষ করতে পারি। বাংলা ভাষায়ও তাই যুগের প্রভাবে পরে বা নানা কারণে প্রভাবিত হয়েও যদি নতুন কোনও রূপ লাভ করে তবে তার Genelogical গুনের জন্য সর্বদাই বাংলা ভাষা রূপে অভিহিত হবে।

বাংলা ভাষা একটি সমৃদ্ধ ভাষা। যার মাতৃভাষী সংখ্যা প্রায় ২৬ কোটি। এই ভাষা প্রায় বিশ্বজুড়ে বহু দেশেই প্রতিষ্ঠিত ও বিশ্বের ষষ্টতম বৃহত্তম ভাষা রূপে পরিগণিত হয়ে থাকে। জাতীয় ভাষা রূপে বাংলা ভাষা বাংলা দেশের জাতীয় ভাষা। ভারতের পশ্চিম-বঙ্গ, বঙ্গোপসাগরে দ্বীপপুঞ্জ আন্দামান ত্রিপুরা, আসাম আদি প্রদেশের প্রধান কথ্য ভাষা ও সরকারি ভাষা এবং এছাড়া ভারতের ঝাড়খন্ড, বিহার, মেঘালয়, মিজোরম, উড়িস্যা রাজ্যগুলিতে উল্লেখযোগ্য পরিমাণে বাংলা ভাষাভাষী মানুষজন রয়েছে। ভারতবর্ষে হিন্দী ভাষার পরই সর্বাধিক প্রচলিত ভাষা রূপে বাংলা ভাষারই স্থান রয়েছে। বাংলা ভাষাতেই ভারতবর্ষের

এবং বাংলা দেশের জাতীয় সঙ্গীত ও স্তোত্র রচিত।

সোশাল মিডিয়া এখন গোটা বিশ্বকে প্রভাবিত করছে বাংলা ভাষার ক্ষেত্রেও তেমনটাই হওয়া স্বাভাবিক। কারণ ভাষাই হল মানব সমাজের প্রধান সম্পর্ক সূত্র। তাই বাংলা ভাষার ক্ষেত্রে এর ব্যতিক্রম অসম্ভব। এছাড়া অন্যান্য ভাষার মত বাংলার কার্য ক্ষেত্র ও বিস্তৃত। বাংলা ভাষায় সাহিত্য সৃষ্টি, অনুবাদ, সাংবাদিকতা সম্পাদনা, প্রকাশন বিজ্ঞাপন, অভিনয়, নিদের্শন, স্ক্রীপ্ট লেখা ইত্যাদি সমস্ত কিছুই করা যেতে পারে, এর সঙ্গে বর্তমানে যুক্ত হয়েছে ব্লগ লেখা, টুইট করা বা সোশাল মিডিয়ার নানান চ্যানালে নিজের অভিজ্ঞতা বা রান্না-বান্না ইত্যাদি প্রচার করা। বলা বাহুল্য সমস্ত কাজই আজ বাংলায় হচ্ছে তবে কেন আজ এই মানসিকতা আমাদের সেটা একবার ভেবে দেখার প্রয়োজন আছে।

সেকালে ইষ্ট ইন্ডিয়া কোম্পানী যে শিক্ষানীতি পরাধীন ভারতবর্ষকে ও ভারত বাসীর মানসিকতাকে আচ্ছন্ন করার জন্য প্রতিষ্ঠিত করেছিলেন সেই নীতির থেকে আজও আমরা মুক্ত হতে পারিনি। বহুদিন যাবৎ এই সিদ্ধান্ত নেওয়ার কথা অনুভব করা হচ্ছে যে প্রাথমিক শিক্ষা মাতৃভাষায় অনিবার্য হওয়া উচিত কিন্তু আজও সম্ভব হয়ে উঠল না। আজও আমাদের শাসকবর্গ উচ্চশিক্ষা ও যান্ত্রিক শিক্ষার বা ব্যবসায়িক শিক্ষার প্রতি দৃষ্টি নিক্ষেপ করে আছে কিন্তু একথা তাঁরা কবে বুঝবেন যে যদি কোনও প্রদীপের আধারেই ছিদ্র থাকে তাহলে তার প্রকাশ কতক্ষণ বা কতদূর যেতে পারে, যেকথা আজকের প্রজন্মকে প্রতি মুহূর্ত অনুভব করতে হচ্ছে। আমরা দেখতে পাচ্ছি দেশের এত অর্থ ব্যয় হচ্ছে উচ্চ শিক্ষণ সংস্থানের infrasturecture-এর জন্য। যার জন্য institution গুলির বিশাল পরিচিতি, তবে প্রতিভার ক্ষেত্রে বিশ্ব শিক্ষা তালিকায় তাদের স্থান অতি নগণ। ইংরিজির মত বাংলা ভাষায় সেই সমস্ত গুণ বিদ্যমান যার ফলে বাংলা ভাষাও সব কিছু করতে সক্ষম যা ইংরেজি ভাষা করতে পারে। যদি বাংলা ভাষার professional ক্ষমতার কথা বলা হয় তাহলে সে সমস্ত বাংলা ভাষায় বিদ্যমান যা অন্যান্য ভাষায় আছে। উদাহরণ স্বরূপ যদি creative কাজের কথা বলি তাহলে নানা রকম লেখালেখি, অনুবাদ, সম্পাদন, প্রকাশন, সাংবাদিকতা সাহিত্য সৃষ্টি বিশদ রূপে ভারতীয় মানসকে নানাভাবে প্রভাবিত করে। আমরা এর প্রতিফলন ভারতীয় মানসে দেখতে পাই কারণ বর্তমান মিডিয়া অথবা সিনে জগতেও তার প্রভাব দেখতে পাই। কারণ আমি toolywoodই নয় bolywood এও এই প্রসঙ্গে একই কথা বলা যায় বাংলা সাহিত্য, সংস্কৃতি, ভাষার ব্যবহার আজ সমস্ত মাধ্যমেই করা হচ্ছে নানাভাবে। তাহলে একথা স্বীকার করতেই হবে যে বাংলাকে জানার চেষ্টা সকলের মধ্যে বিদ্যমান। কিন্তু স্বীকার করতে চায় না। তাহলে এই ব্যপারটা বোঝা দরকার। যদি আজ নতুন প্রজন্ম যেদিকে এগিয়ে যাচ্ছে তার মূলে মুখ্য রূপে আছে 'অর্থ'। যদি অর্থই হয় তাহলে বাংলা বা ভারতীয় যে কোনো ভাষারই সঙ্গে তুলনা করলে বাংলা সমস্ত ক্ষেত্রেই একটি সম্পূর্ণ সক্ষম ভাষা।

পরিবর্তন এই সৃষ্টির নিয়ম। ভাষা যখন একটি নিয়ন্ত্রণ unit তখন স্বাভাবিক ভাবেই ভাষার ক্ষেত্রেও পরিবর্তন স্বাভাবিক। এই পরিবর্তন ভাষা এবং ভাষা-ভাষীর ক্ষেত্রেও এসেছে। ফলে আজকের বর্তমান

পরিবেশে একটি নতুন দৃষ্টিভঙ্গী দেখা দিয়েছে যে বর্তমান প্রজন্ম নিজের মাতৃভাষার ব্যবহার করতে চাইছে, করছে বা উন্মুখ হয়েছে কিন্তু তারা কীভাবে মাতৃভাষার ব্যবহার করছে সেটা আলোচনা করে নেওয়া প্রয়োজন প্রথম কথোপকথনের ভাষায় তারা স্থানীয় ভাষার ব্যবহার করার ফলে মাতৃভাষার ব্যবহারের সুযোগ কম হয়ে যায় এবং স্থানীয় ভাষার প্রভাবে মাতৃভাষা প্রভাবিত হয় এবং অনেক সময় তার ব্যবহারও কমে যায়। যদিও তার বহু কারণ আছে। এছাড়া আরেকটি বড় নতুন স্টাইল আজ দেখা দিয়েছে সোশাল মিডিয়তে। ভাষা ব্যবহারের ক্ষেত্রে তারা বাংলা বা যে কোনো ভাষায় নিজের মন্তব্য ব্যক্ত করেন কিন্তু ব্যবহার করছে ইংরেজি script। যারা জানেন না তাদের জন্য কিছু বলার বা করার নেই কিন্তু যারা সেই ভাষা লিখতে পারেন তাঁদের চেষ্টা করা উচিত যে ভাষায় তিনি তাঁর মন্তব্য দিচ্ছেন সেই ভাষাকেই যেন অবলম্বন করেন। ভাষা হল জাতির ইতিহাসের নথীপত্র। ভাষা যদি লিখিত রূপে না থাকে তাহলে তার অস্তিত্ব একদিন শেষ হয়ে যাবে। তাই আজকের প্রজন্ম যেখানে বিজ্ঞাপন এর ক্ষেত্রে কাজ করছে, blog লিখছে, twit করছেস script writing করছে বা নানা রকমভাবে কোনও বাণিজ্যিক কাযে যুক্ত আছে সেখানে তাদের লক্ষ রাখতে হবে যে ভাষার ব্যবহার ভাষার মর্যাদা রক্ষা করাও তাদের দায়িত্ব। কারণ যেভাবে ভাষার গতিপথে পরিবর্তন ঘটছে একাদি মাতৃভাষাগুলি কোথাও হারিয়ে না যায়।

বলা বাহুল্য বাংলা ভাষা একটি সুসমৃদ্ধ সম্পন্ন ভাষা। তবে এই ভাষাকে সমৃদ্ধ রাখার জন্য আমাদের পলায়নী প্রবৃত্তিকে ত্যাগ করে রুখে দাঁড়াতে হবে। ঠিক যেমন বৃটিশদের তাড়াবার জন্য একটি সমগ্র বাঙালি জাতি জেগে উঠেছিল আজও সেই জাগরণ প্রয়োজন। নেতাজী মন্ত্র দিয়েছিলেন তুম মুঝে খুন দো ম্যা তুমেহে আজাদী দুঙ্গা। আজকের যুগকেও বুঝতে হবে যে সেই দাসত্বের শৃঙ্খল থেকে মুক্ত হয়েও আমরা সত্যি কী মুক্ত হতে পেরেছি? যে ভাষার উৎপত্তির ইতিহাস অন্যের প্রয়োজনীয়তা মেটানোর জন্য অর্থাৎ ইংরেজরা নিজেদের প্রচার প্রসারের জন্য যেই বাংলা ভাষাকে প্রচার প্রসারের ব্যবস্থা করলেন সেই বাংলা ভাষার থেকেই আমরা বিমুখ হয়ে অন্যান্য ভাষার প্রতি উন্মুখ হতে চলেছি। কারণ আমাদের এ বিষয়ে চিন্তন করতে হবে এবং নবপ্রজন্মকে অনুভব করাতে হবে যে আমাদের আবার যেন কোন বঙ্গ ভঙ্গের সম্মুখীন না হতে হয়। আবার যেন কোনও নেতাজীকে হারাতে না হয়। আবার যেন কোন ২১শে ফেব্রুয়ারীর প্রয়োজন না হয়।

সহায়ক গ্রন্থ—

১। Lord Mecaley's Address to the British Parliament on 2nd Feb. 1835- Lord Mecaley

২। ভাববার কথা—রবীন্দ্রনাথ

৩। সাময়িক পত্রে বাংলার সমাজ চিত্র— বিনয় ঘোষ

৪। ভারতবর্ষ পত্রিকা

প্রতিভা বসু

ড: ঝুমুর সেন গুপ্ত

বাংলা বিভাগ

মর্তবাসীকে এই জীবন সিন্ধু মন্থন করে অমৃত-গরল পান করে তবেই বেঁচে থাকতে হয়। কিন্তু এই বিষামৃত পান করে যিনি আত্মস্থ হয়ে থাকেন ও সেই উল্লাস ও বিষাদ নিজের লেখনীর স্পর্শে জারিত করে সর্বসাধারণকে হাসান, কাঁদান বা তাঁরই অনুভূতির দ্বারা উপলব্ধি করান তিনিই তো জাত সাহিত্যিক।

লেখিকা প্রতিভা বসুও তেমনি এক বিদুষী সাহিত্যিক। তাঁর কয়েকটি ছোটগল্প ও উপন্যাস নিয়েই স্বল্প পরিসরে আলোচনা করবার আগ্রহ নিয়েই এই প্রবন্ধের অবতারণা। লেখিকার জন্ম অবিভক্ত বাংলার, বর্তমানে বাংলাদেশের ঢাকা শহরের অদূরে বিক্রমপুরে ১৩ই মার্চ, ১৯১৫। তাঁর পিতার নাম শ্রী আশুতোষ সোম ও মায়ের নাম সরযূবালা সোম। বিখ্যাত সাহিত্যিক বুদ্ধদেব বসুর সঙ্গে বিবাহ বন্ধনে আবদ্ধ হন। বিবাহের পূর্বে রাণু সোম নামে পরিচিত ছিলেন। দুই মেয়ে মীনাক্ষী দত্ত ও দময়ন্তী বসু সিং এবং একটি পুত্র সন্তান নাম শুদ্ধশীল বসু। পুত্রের মাত্র ৪২ বছর বয়সে মৃত্যু হয়। তার অকাল মৃত্যু মাতৃহৃদয়কে স্তব্ধ করে দিয়েছিল। যৌবনে তিনি সঙ্গীত শিল্পীও ছিলেন। তিনি বিখ্যাত সঙ্গীত শিল্পীদের কাছে সঙ্গীত চর্চা করেছিলেন। কাজী নজরুল ইসলাম, হিমাংশু দত্ত ও রবীন্দ্রনাথ ঠাকুরের কাছে গান শিখেছিলেন। ১২ বছর বয়সে প্রথম তিনি গ্রামাফোন ডিস্কে রেকর্ড করেন। ১৯৪০ সাল পর্যন্ত তিনি সঙ্গীত জগতের সঙ্গে যুক্ত ছিলেন। বিবাহের পর সঙ্গীত চর্চা ছেড়ে দেন। তাঁর জীবনাবসান ঘটে ১৩ অক্টোবর, ২০০৬। লেখিকা বিংশ শতকের বাঙালী নারীবাদী সাহিত্যিকাদের মধ্যে অন্যতম পথিকৃত।

তাঁর লেখা ছোটগল্পগুলির প্রায় সবকয়টির উপজীব্য মূলত: প্রেম যার তৃষ্ণা প্রতিটি মানুষের মধ্যে বিরাজমান। তাঁর ছোটগল্পগুলি রোমান্টিসিজমে পূর্ণ, আবেগ বিহ্বল উদ্দাম আবার বিরহের ধূসর বিষাদে ম্লান বিবর্ণ। তবু তিনি প্রেমের জয়গান অসংকোচে গেয়েছেন।

প্রেমের এই চিরন্তন পিপাসা—'প্রতিভূ' গল্পের যৌবনে বিধবা তিন সন্তানের জননীকে আবেগে বিহ্বল করেছে, তবুও এই দুর্মর পিপাসাকে সংযত করতে হয়েছে, নিজেরেই তিনটি সন্তানের মুখ চেয়ে। সর্বোপরি সামাজিক কলঙ্ককে তো উপেক্ষা করা যায় না। যদিও সে পুরুষটি তাকে আশ্বাস দিয়েছিল, প্রেমের আশ্রয় দিয়েছিল, সেই পুরুষের ঔদার্য্যের ও মহত্বের কোন ঘাটতি ছিল না। অপরিসীম দরদে তিনি তার প্রেমিকাকে সর্ব্বাঙ্গীনভাবে আশ্রয় দিতে চেয়েছিল। তবু নায়িকা লতিকা তাঁর প্রেমিকাকে ফিরিয়ে

দিয়েছিল অশ্রুসজল চোখে। অথচ কালক্রমে যখন সেই স্নেহের সন্তানগণ একে একে সাবালক হয়ে দু:খিনী মাকে ছেড়ে চলে গেল দূর বিদেশে, তখন তিনি যে নিতান্ত একাকী, নিঃসঙ্গ জীবন কাটাতে লাগলেন তা একমাত্র বিধাতা পুরুষ ছাড়া আর কেউই জানতে পারল না। এক সীমাহীন বিষন্নতা তাঁর জীবনের পাথেয় হয়ে থাকল। লতিকার এই করুণ পরিণতিতে গল্পটি নিখুঁত বাস্তব হলেও পাঠক চিত্তকে বেদনা বিদ্ধ করে তুলেছে।

প্রতিভা বসু তাঁর ছোটগল্পগুলির মধ্য দিয়ে একথাই বারাবার বোঝাতে চেয়েছেন যে প্রেম তা পুরুষ বা নারী যার মধ্যেই দেখা দিক না কেন তা যদি খাঁটি ও স্বত:স্ফূর্ত হয় তা কখনই নি:শেষ হয়ে যায় না। নর-নারীর অন্তরে তা অমলিন উদ্ভাসে প্রজ্জ্বলিত হতে থাকে। জীবনের চড়াই উৎরাইয়ে বিধ্বস্ত হয়েও তারা একান্ত প্রিয়জনের জন্য চিরদিনই প্রেমের দীপটি জ্বালিয়ে রাখে। এ বিষয়ে লেখিকা শুধুমাত্র নারী প্রেমের অব্যক্ত বেদনাই লিপিবদ্ধ করেন নি পুরুষও যে তার হৃদয়ের ঔদার্য্য দিয়ে তার "সাহস বিস্তৃত বক্ষপট" দিয়ে তার একান্ত প্রিয়তমাকে আবরণ করতে চেয়েছে। যথা সময়ে আত্মীয় স্বজন দ্বারা লাঞ্ছিতা অসহায়া নারীকে সকল দিক দিয়ে আশ্রয় দিয়েছে-তাও তাঁর স্বচ্ছ দৃষ্টি থেকে বাদ পড়েনি।

এ বিষয়ে তিনি নারীর জীবন যন্ত্রণার কথা লিখলেও তাঁকে একান্ত নারীবাদী লেখিকা বলা যাবে না। আমাদের মনে হয় তিনি মানুষের জীবনের খুব কাছাকাছি এসেছিলেন, তাই মানব জীবনের যেমন রুচিহীনতা, অশালীনতা, হিংস্রতাকে দেখেছেন আবার অপর দিকে মহত্ব, মানবিকতা ঔদার্য্য সবই তাঁর লেখনীতে ধরা পড়েছে। জীবনের প্রতি দৃষ্টিভঙ্গী নানা বিচিত্র অভিজ্ঞতাকে অসীম নৈপুণ্যে ও মননশীলতায় তিনি সাহিত্যরসে সিক্ত করে, কখনও করুণ রস কখনও অশ্রুধারায় প্লাবিত হয়ে, আবার কখনও সমাজ-বিদ্রোহের অগ্নিরসে, কাহিনীতে লিপিবদ্ধ করেছেন।

নারীর দেহে মনে অপরিতৃপ্ত ভালোবাসার জন্ম, অশালীন স্বামীর অমর্যাদা বোধ ব্যবহারে অতিষ্ঠ হয়ে অন্য পুরুষের সঙ্গ লাভে উৎসুক এ সবই ভালোবাসা চাওয়া পাওয়ার চিরন্তন আত্মিক ও জৈবিক ক্ষুধা। অপর দিকে দেখতে পাই কবি-প্রাণ সুশান্ত দাম্পত্য জীবনে অসুখী ছিল, তার স্ত্রীর অকরুণ ব্যবহারে। লেখিকা এই গল্পে বোঝাতে চেয়েছেন যে নর-নারীর দাম্পত্য জীবনের সুখ আনন্দ সম্পূর্ণ নির্ভর করে স্বামী-স্ত্রীর পারস্পরিক নিখাদ ভালবাসা, দরদ, সহমর্মিতার উপর। লেখিকার অধিকাংশ গল্প পড়ে মনে হয় এ বিষয়ে তাঁর অটল স্থির প্রত্যয় ছিল। এ স্থলে একটি কথা উল্লেখ করা বোধহয় নিতান্ত অপ্রসাঙ্গিক হবে না যে লেখিকা ও তাঁর লেখক স্বামীর সুখী দাম্পত্য জীবন, পরস্পরের সহমর্ম্মিতা, সম-মানসিকতা তাঁর এই সাহিত্য কৃতির নেপথ্যে প্রেরণা জুগিয়েছিল।

লেখিকা কৈশোরাবস্থার প্রেমের ছবিও এঁকেছেন কৌতুকভরে-'প্রথমসিঁড়ি' গল্পে নায়িকা অনুরাধা, 'আয়না' গল্পে পারমিতা এই কৈশোর বয়সের অবুঝ প্রেমের প্রতিভূ হয়ে উঠেছে। অবুঝ প্রেমের সন্ধান অনুরাধা নিজেও পায়নি, নিজে যখন বুঝল তখন বেদনা অনুভূত হল। এই ভালবাসা যে চিরস্থায়ী নয় তা বুঝতে পারল। লেখিকার প্রকাশ ভঙ্গী এ গল্পে কৌতুকোজ্জ্বল অথচ কোমল মাধুর্য্যে বিকসিত।

''আয়না'' গল্পে পারমিতা ভালবেসেছিল তার চাইতে কুড়ি বছরের বড় এক চিত্রকর-সুমন কাকুকে। প্রতি নারীর অন্তরে স্বামীর এক আদর্শ প্রতিমূর্তি থাকে। কিশোরী মনে স্বামীর ছবি যেভাবে আঁকে তার প্রতিচ্ছবি যার মধ্যে দেখে, তাঁর প্রতিই মুগ্ধ হয়। অনেক সময় দেখা যায় এ সত্যিকারের প্রেম নয়-বলা যায় মডেল ইমেজকে ভালোবাসা। তিনি এখানে কিশোরী পারমিতার মনের সূক্ষ্ম বিশ্লেষণ করেছেন। পারমিতা তার মাতামহীকে জিজ্ঞাসা করল-''এই যে সুমন কাকা আমাকে এত ভালোবাসেন, আর আমার তাকে এত ভালোলাগে, এর নামই কি সত্যিকারের ভালোবাসা? দিদা স্পষ্ট করে বল্লেন 'না।'

তবে এটা কি?

এটা তোমার গন্তব্যে পৌঁছুবার অনেকগুলির মধ্যে একটা তীরক্ষেপ।

তারপর একদিন আসল তীরন্দাজকে চিনতে পারবে।''

নারী মনস্তত্ত্বের সূক্ষ্মাতিসূক্ষ্ম আক্ষেপ বিক্ষেপ, আকুলতা, মোহ ভ্রান্তি লেখিকা অত্যন্ত দরদের সঙ্গে লিপিবদ্ধ করেছেন।

লেখিকার ভাষার প্রসাদগুণ ও সাবলীলতা পাঠক চিত্তকে আকর্ষণ করে, গল্পের শেষ পর্যন্ত পাঠক মনকে ধরে রাখে। প্রতিটি গল্পের উপস্থাপনা বিষয়বস্তুর প্রেক্ষাপট বৈচিত্র্যে ভরপুর, জীবনের নানা ধরণের উল্লাস-বিষাদ, অম্ল-মধুর অভিজ্ঞতার ভিত্তিতে লিখিত।

তাঁর দৃষ্টিতে বিংশ শতাব্দীর গোড়ায় বা শেষপাদে যে সব তরুণ যুবক দেশোদ্ধারে মেতে উঠেছিল, তারা যে সবাই সত্যকারের দেশপ্রেমিক ছিল না—তা নির্মোহভাবে ধরা পড়েছিল। উদাহরণ স্বরূপ 'ঘাস মাটী' গল্প ও 'ভেজানো দরজা'-গল্প। প্রথম গল্পে একটি বিপ্লবী মেয়ের নিদারুণ হতাশা (সে বিপ্লবের মোহে তার প্রিয়জনকে খুনের মদত দিয়েছিল) পরবর্তীকালে সে দেখল বিপ্লবীদলের নেতা একজন পথ ভ্রষ্ট মানুষ। দ্বিতীয়টা একটি বিপ্লবী নেতার চারিত্রিক স্খলন ও পথ ভ্রষ্টতার কাহিনী।

প্রতিভাদেবী দেখাতে চেয়েছেন যে প্রতিটি নারী পুরুষ একক ভাবে অর্দ্ধ-অস্তিত্ব বিশেষ। দুই ধরনের নারী- পুরুষ যদি সত্য ভালবাসার বন্ধনে আবদ্ধ হয় তাহলেই কি নারী কি পুরুষ সম্পূর্ণ হয়ে ওঠে। কবির

কল্পনায় যে অর্দ্ধনারীশ্বর আঁকা আছে তা সম্পূর্ণ হয়ে ওঠে তখনি, যখন প্রেমে ভালবাসার অজস্র সম্ভারে নারী-পুরুষ উভয়েই ঋদ্ধ হয়ে ওঠে-পরিপূর্ণ মনুষ্যত্বে উত্তীর্ণ হয়ে যায়। তাই "ঈশ্বর ও নারী" গল্পে সন্ন্যাসী আনন্দ শঙ্কর তাঁর প্রেমিকাকে বলেন—"তুমি নির্মল, তুমি পবিত্র, তুমিই আমার পরম প্রাপ্তির শেষ স্তর।"

আবার "উৎস" গল্পের ছেলেটি সুখেন তার স্খলিত পদক্ষেপ ভ্রষ্ট জীবন ত্যাগ করে সম্পূর্ণ এক অসহায়া নারীর অকুণ্ঠ শ্রদ্ধা ও প্রেমে বশ্যতা স্বীকার করল, সেও ভালবাসায় আবিষ্ট হয়ে ধীরে ধীরে সুপথের দিকে অগ্রসর হল। অবশেষে তার পরিপূর্ণ মনুষ্যত্বে উত্তরণ ঘটল।

মানুষের জীবনে স্খলন পতন ক্রটী বিচ্যুতি তো থাকবেই কিন্তু একমাত্র সত্য প্রেমই মানুষকে যথার্থ মানুষ করে তোলে। পারিপর্শ্বিকতার চাপে অবস্থার ফেরে মেয়েদের যে কত রকম ভাবে নিজের ইচ্ছার বিরুদ্ধে ক্লিষ্ট পরিবেশে কাজ করতে হয় তার হিসাব কে বা রাখে? প্রতিভাদেবীর অন্যতম একটি গল্প 'মাদমা জোলে গতিয়ে' গল্পটি এইরূপ—একটি নর্তকীর জ্বালাময় জীবনের কাহিনী। ঘটনাচক্রে একটি ভারতীয় যুবককে সে হৃদয় দান করেছিল। ভারতীয় যুবক হোটেলে অশ্লীল নৃত্যরতা নর্তকীকে দেখে চরম ঘৃণা প্রকাশ করেছিল। এই ঘৃণা মেয়েটিকে নিদারুণ আঘাত করে, অথচ ছেলেটিকে সে মনে মনে গভীর ভাবে ভালবাসে। কিন্তু বিধাতার পরিহাস-ছেলেটির মৃত্যু হল-মেয়েটির ভালবাসা, নারীত্ব সবই ব্যর্থ হল। সমাজের চোখে যারা পতিতা, তাদের জীবনেও নারীত্বের মূল্যবোধের জন্য ব্যাকুলতা দেখতে পাওয়া যায়। তাদের জীবনেও প্রেম আসে, মাতৃত্বের স্বতঃস্ফূর্ত আস্বাদ নিতে তারাও অগ্রহী। আপাতদৃষ্টিতে যাদের আমরা পতিতা বলি, তাদরেও জীবনে প্রেম আসে। ছেলেটি নর্তকীকে বলেছিল যে নাচে, সে আর আপনি এক নন। এই কথাই নর্তকীর পরিপূর্ণ নারীত্বকে জাগরিত করল এবং মনুষ্যত্বে উর্ত্তীণ করে দিল। সে শেষে সারা জীবন ত্যাগের মাধ্যমেই জীবন অতিবাহিত করল।

প্রতিভাদেবীর সমগ্র উপন্যাসবলীর প্রধান উপজীব্য প্রেম। তাঁর 'মনের ময়ূর' (সেপ্টেম্বর, ১৯৫২), বিবাহিতা স্ত্রী' (মে, ১৯৫৪), 'মধ্যরাতের তারা' (ফেব্রুয়ারি, ১৯৫৮), 'মেঘের পরে মেঘ' (আগষ্ট, ১৯৫৮), 'সমুদ্র-হৃদয়', (আগষ্ট, ১৯৫৯), 'বনে যদি ফুটল কুসুম' (১৯৬১) 'উজ্জ্বল উদ্ধার', 'আলো আমার আলো' ইত্যাদি বিখ্যাত উপন্যাস।

তাঁর 'মনের ময়ূর'-গল্পের বিষয় বস্তু হল প্রেম, নর-নারীর একান্ত ভালবাসা যা কখনো নিঃশেষ হয় না, অফুরান সে প্রেম পরস্পরের হৃদয়ে নিষ্কম্প শিখায় সতত দেদীপ্যমান। গল্পটির নায়িকা রুচিবান মধ্যবিত্ত পরিবারের ব্রাহ্মণের মেয়ে অনসূয়া। অপর পক্ষে নায়ক বিনয় অপেক্ষাকৃত সম্পন্ন পরিবারের কায়স্থের সন্তান। বিনয়ের জীবনের দুর্ভাগ্যবিজড়িত নানা ধরনের বিড়ম্বনা অবশেষে মিলনান্তিক প্রেমের

গভীর উপলব্ধি উপন্যাসের মূল বিষয় বস্তু। এরই সাথে অন্যান্য ঘটনার অবতারনা ঘটেছে। অসবর্ণ প্রেম মেনে নিতে পারে নি অনসূয়ার পিতা-মাতা প্রধানত: রক্ষণশীল মতবাদের জন্য বিশেষত তার কাকার উগ্র-জাত্যাভিমান ও নির্মম নীতি বোধের দ্বারা প্রভাবিত হয়ে এই অসামাজিক প্রেমকে তারা বিবাহে পরিণত হতে দিলেন না। ফলে বিনয় ও অনসূয়া ঘর পরিত্যাগ করে এবং বিবাহ বন্ধনে আবদ্ধ না হয়েই একে অপরের কাছে আত্ম নিবেদন করে। এই দুঃসাহসিক সংকল্প তৎকালীন সমাজে আলোড়ন আনে। শেষে পুলিশের সাহায্যে এই পলাতক প্রণয়ীযুগল ধরা পড়ে ও অনসূয়াকে দিয়ে মিথ্যা অভিযোগ খাড়া করান হয় এবং এই অভিযোগের ফলে বিনয়ের তিন বৎসর জেল হয়ে যায়। অনুসূয়া বিনয়ের সাথে তার গৃহ পরিত্যাগের বিবরণটা অবাস্তব মনে হয়। অবশেষে কৈশরের প্রেম বিবাহ বন্ধনে আবদ্ধ হল তেত্রিশ ও চল্লিশ বছর বয়সে পৌঁছে। নিঃসঙ্গ জীবনে নতুন করে প্রেম ফিরে এল নতুন করে মনের ময়ূর পাখা মেলে ধরল।

প্রথম প্রেমই জয়ী হয় প্রতিভা বসুর প্রথম উপন্যাস 'মনোলীনা'তে। লেখিকা তাঁর লেখা নিয়ে নিজেই বলেছেন—'মনোলীলা' তার শুধু প্রথম উপন্যাসই নয়, বিবাহিতা মেয়ের স্বামী বর্তমানেও প্রেমে পড়ে পুনর্বিবাহের গল্প হিসেবেই প্রথম।

গল্পটিতে দেখান হয় অধ্যাপক সত্যশরণের স্ত্রী 'মনোলিনার'র নায়িকা লীলা। সত্যশরণ বিদ্বান মেধাবী দরিদ্র অধ্যাপক। লীলা সত্য শরণের সঙ্গে বিয়েতে সুখী হয়নি কারণ সে দারিদ্রতাকে ঘৃণা করত। কোন এক সময়ে সত্যশরণের অজ্ঞাতসারে তারই সহপাঠী বড়লোক বিকাশকে ভালবেসে পাঁচ বছরের খুকুকে ছেড়ে নতুন জীবনের উদ্দেশ্যে ঘর ছাড়ে।

তারপর বারো বছর বিকাশের ঘর করেও অবশেষে তৃপ্ত হতে পারেনি লীলা। বিকাশ স্ত্রীকে বহুমূল্য বসনভূষণ পরিব্রতা মূল্যবান সামগ্রী মনে করত-লীলাময়ীর ইচ্ছার কোন দাম ছিল না। দরিদ্র অধ্যাপকের সংসার থেকে মুক্তি চেয়ে লীলা কী এমনই এক জীবন কামনা করেছিল ? বুঝতে পারে না।

বিকাশের স্ত্রী হওয়ার পর বারো বছর পর এক বিয়ে বাড়িতে গিয়ে নববধূকে দেখে লীলা খুঁজে পেয়েছিল তার ফেলে আসা পাঁচ বছরের খুকুর মুখ। বার বার অতীতের দিনগুলি নিভৃত ভাবনায় ফিরে ফিরে আসতে লাগল। 'কাঁচা -পাকা দাড়ি ভরা একটি প্রশান্ত মুখচ্ছবি, আর চন্দনচর্চিত অতি সুন্দর একটি তরুণীর মুখ। এরপর প্রথম স্বামীর সঙ্গে দেখা হয়নি ঠিকই কিন্তু বিকাশের উদ্ধত আত্মকেন্দ্রিক আকর্ষণ ম্লান হয়ে গেছে। উজ্জ্বল হয়ে উঠেছে প্রথম স্বামীর প্রশান্ত প্রেম।

প্রেমের জয় ঘটেছে প্রতিভা বসুর 'সমুদ্র হৃদয়' উপন্যাসে। দেশব্যাপী দাঙ্গার বীভৎসতার পটভূমিকায়

এই কাহিনীর নায়ক নায়িকার প্রেম ও অপ্রেমের গল্প। এর কাহিনীতে নায়ক মুসলমান ও নায়িকা হিন্দু। দুই ধর্মের নর-নারীর হৃদয়ের দ্বন্দ্ব এই প্রেমের উপাখ্যানে স্থান পেয়েছে।

নায়িকা সুলেখা আর নায়ক সুলতানের হিন্দু বিদ্বেষী গভীর ঘৃণা কেমন ভাবে ভালোবাসার টানে একে অপরের কাছে ধরা দিয়েছে তাই বর্ণিত হয়েছে। অবশেষে শুধু বিদ্বেষ নয়, বিচ্ছিন্নতা নয়, প্রেমেই শুদ্ধ হয়েছে সুলতান আমেদ। নিজের সংযমে আর আত্মত্যাগের মাধ্যমে বিমুখ নায়িকার ভালোবাসা, প্রাণ দিয়ে শোধ করে গেছে, প্রেমের ঋণ। প্রেমের আভায় উজ্জ্বল হয়ে সমস্ত গ্লানি মুছে ফেলেছে তার দাঙ্গা কলঙ্কিত মুখ।

শুধুমাত্র প্রেমের মধুরতার ছবিই নয়, জীবনের তিক্ততার গল্পও প্রতিভা বসু ফুটিয়ে তুলেছেন 'বিবাহিতা স্ত্রী' উপন্যাসে। এই উপন্যাসের নায়ক ছিল ভদ্র সংস্কৃতিবান নাম সুনির্মল। সুনির্মলের বিবাহ হয় স্বার্থপর লোভী রুচিহীনা প্রমীলার সঙ্গে। রুচির বৈষম্যের জন্য দুই অসম মানসিকতার মধ্যে সংঘাত হয় তার ফলে প্রমীলার স্বভাবের কাছে নতি স্বীকার করতে হয় সনির্মলকে ও তার সুরুচি সম্পন্ন পরিবারকেও।

অনেক অশান্তির পর প্রমীলা সংসার ছেড়ে গেলে সুনির্মলের জীবনে এসেছিল শকুন্তলার স্নিগ্ধ প্রেম। শকুন্তলার শান্ত প্রেম তাকে তৃপ্ত করেছিল। নতুন জীবনে প্রবেশ করে দুই জন নিজেদের মধ্যে আবেগের মাধ্যমে আশ্রয় খোঁজার চেষ্টা করতে লাগল। তখন তাদের সেই নতুন সংসারে ফিরে আসে প্রমীলা, তার উগ্র স্বভাব সুনির্মল ও শকুন্তলার প্রেমের স্বপ্নকে ব্যর্থ করে তাদের সংসারে একাধিপত্য প্রতিষ্ঠিত করতে চায়। শকুন্তলার সংসার ভেঙে যায়। বুক ভরা শূন্যতা নিয়ে প্রমীলার সংসারে সুনির্মল থেকে যায়-'পুঞ্জ পুঞ্জ ঘন অন্ধকারের সঙ্গে গাঁটছড়া বেঁধে, আলোহীন হাওয়াহীন আকাশহীন মাটিহীন নিশ্বাসরোধী' অন্ধকার গহ্বরে। এই উপন্যাসে গভীর সমস্যার অবতারনা না হওয়ায় তার সাহিত্যিক মূল্য বাস্তবতার মধ্যেই সীমাবদ্ধ।

দাম্পত্য জীবনের তিক্ততা ও যান্ত্রিকতা অনেক সময় স্থান পেয়েছে প্রতিভা বসুর উপন্যাসে। নায়িকারা নানাভাবে জীবনে চলার পথে নিজেদের দিশা খুঁজেছে। কখনো জীবিকায় স্বনির্ভর হয়েছে, কখনো ভুল ঠিক যেমন হোক, নিজের জীবন যাপনের সিদ্ধান্ত নিজেরাই নিয়েছে। তাই নারী জীবনের অনেক টুকরো টুকরো ব্যর্থতা ও প্রেম অর্জনের ছবি উপন্যাসে আঁকলেও প্রতিভা বসু উপন্যাসকে নতুন নতুন দৃষ্টিতে উপস্থাপিত করেছেন। বিষয়ের বৈচিত্র্যে রস সৃষ্টিতে লেখিকা পারদর্শিতা দেখিয়েছেন।

প্রতিভা বসুর অনেক উপন্যাস নিয়ে চলচিত্র হয়েছে যেমন—'আলো আমার আলো, পথে হল দেরী' বা 'অতল জলের আহ্বান'।

'আলো আমার আলো' উপন্যাসের গল্পের নায়ক এক চরিত্র ভ্রষ্ট বিপথগামী যুবক। অর্থের জোরে সে প্রতিরাতে নারীকে নির্বিচারে ভোগ করত। কালক্রমে সে যখন নিতান্ত দরিদ্র এক নারী অতসীকে নির্যাতিত করবার জন্য উদ্ধত হয় তখন সে প্রাণপণে প্রতিহত করবার চেষ্টা করে তার ফলে তার স্মৃতিভ্রংশ হয়। পরে অতসীর প্রচেষ্টায় তার সম্বিত ফিরল। ভাগ্যচক্রে সে অতসীকে ভালবাসল, নিজেকে অধ:পাত থেকে সরিয়ে আনল এবং পরিশেষে দুজনে ভালবাসায় মিলিত হল।

এখানেও বিশুদ্ধ ভালবাসার ফলে নায়ক চরম অধ:পতন হতে মনুষ্যত্বের বিবেকে প্রত্যাবর্তন ও উত্তরণ করল। দরদী লেখিকা সেই চিত্রটিকে বলিষ্ঠ লেখনীতে তুলে ধরেছেন।

কিন্তু আমার সবচাইতে ভাল লেগেছে লেখিকার নিজের জীবনের কাহিনী 'জীবনের জলছবি' এ যেন সহজ সরল ভাষায় আমাদের জীবনের কাহিনী। মধ্যবিত্ত জীবনের নানা ঘটনার চিত্র তুলে ধরেছেন। জীবনের পথ কখনো মসৃণ নয় রুক্ষ্ম পথ ধরে চলতে হয় সব মানুষকেই তা কারোরই অজানা নয়। কিন্তু যিনি তার জীবনের ঘটনা বলিষ্ঠ লেখার মাধ্যমে অকৃপণভাবে তুলে ধরতে পারেন তিনিই আমাদের প্রিয় লেখিকা প্রতিভা বসু।

একই জীবনে অনেকগুলো পরিচয় নিয়ে বেঁচে থাকা। লেখিকার সাবলীল লেখার মধ্যে শান্তি খুঁজে পাওয়া যায়। আত্মজীবনী মূলক লেখা যারা ভালোবাসেন তাদের অবশ্যই ভাল লাগবে। জীবন সায়াহ্নে এসে সারা জীবনের জমে থাকা ঘটনা সম্বলিত বর্ণনা মাত্র, ছবির মত ফুটিয়ে তুলেছেন এতে। তাই ঘটনা বহুল লেখা জীবনের জলছবি, হয়ে উঠেছে।

ঢাকা শহরে বড় হয়ে ওঠার জন্য আত্মজীবনীতে অবিভক্ত বাংলা, দেশবিভাগ ও পরবর্তী সময়ের জীবন যাত্রার কিছুটা ছাপ পাওয়া যায়। তাঁর উপন্যাসে সাম্প্রদায়িক দাঙ্গা, কলকাতায় শরণার্থী সমস্যা ও তাদের দুর্দশার ঐতিহাসিক চিত্র পাওয়া যায়। এই আত্মজীবনীতে তৎকালীন সাহিত্যিক, গায়ক ও ইতিহাসের অনেক গুরুত্বপূর্ণ ব্যক্তিত্বের সাথে পাঠককে পরিচয় করিয়েছেন-যেমন রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর, সমর সেন, বৈজ্ঞানিক সত্যেন্দ্রনাথ বসু, কাজী নজরুল ইসলাম, মানিক বন্দ্যোপাধ্যায়, হিমাংশু দত্ত, সাগরময় ঘোষ, দিব্যেন্দু পালিত। এই লেখার মাধ্যমে এনাদের ব্যক্তিগত জীবনের অনেক তথ্য জানা গেছে।

লেখিকার আত্মজীবনীর একটি অংশ আবার বুদ্ধদেব বসুর সাথে তাঁর সংসার জীবনের কাহিনীও বর্ণিত হয়েছে। স্বামী সাংসারিক ছিলেন না তা তিনি উল্লেখ করেছেন। তিনি নিয়মিত ঈশ্বরের কাছে প্রার্থনা করতেন। সেই লেখিকাই আবার হয়ে উঠতেন সংশয়বাদী। তাঁর নারীবাদী মনোভাবের প্রকাশ ঘটেছে লেখার মধ্যে। তাঁর কথায়-"গান গেয়ে যতো "আহা" "উহু" শুনেছি, যত তাড়াতাড়ি বিখ্যাত হতে

পেরেছি, পুরুষ শাসিত সমাজে লেখক হিসেবে অদ্যাবধি সেই সম্মান আমি পাইনি। না পাবার একটাই কারণ আমি মেয়ে।" তবে অনেক চরিত্রের সমাবেশের ফলে কখনো কখনো লেখা হয়ে উঠেছে ক্লান্তি কর। তাছাড়া নিজের জীবনের খারাপ ভালো সব দিক প্রকাশ পায়নি বলে মনে হয়। তাই আত্মজীবনী রূপে সার্থক না হলেও বই হিসাবে উল্লেখযোগ্য।

সর্বশেষে বলতে পারি প্রতিভা দেবীর ছোটগল্প-উপন্যাস সবই একই সূত্রে গাঁথা। বিশ শতকের সমাজে নির্দিষ্ট মূল্যবাধের হিসেব, সমাজের পূর্ব নির্ধারিত সব ধারণা, সেই সময়ের নারী সাহিত্যিকরা যে ভাবে উপস্থাপিত করেছিল প্রতিভা দেবীও তাঁদের মধ্যে স্বমহিমায় নিজেকে প্রতিষ্ঠিত করেছিলেন। তাঁর সাহিত্যচর্চার অমূল্য মূল্যবোধ পাঠক মহলে সততই উজ্জ্বলরূপে প্রতিভাত।

সহায়ক গ্রন্থ :

''বঙ্গ সাহিত্যে উপন্যাসের ধারা' শ্রীকুমার বন্দ্যোপাধ্যায়

শ্রেষ্ঠ গল্প-প্রতিভা বসু

সংসদ বাংলা সাহিত্যসঙ্গী, শিশির কুমার দাশ।

'অন্তর্মুখ'-বাংলা গবেষণা পত্রিকা, প্রতিভা বসু স্মরণ সংখ্যা

'মেয়েদের উপন্যাসে মেয়েদের কথা'—সুদক্ষিণা ঘোষ

আধুনিক বাংলা সাহিত্যের ইতিহাস, তপন কুমার চট্টোপাধ্যায়

উনিশ শতক : স্ত্রী শিক্ষা

ড: স্বপ্না বন্দ্যোপাধ্যায়

বাংলা বিভাগ

ভারতবর্ষের ইতিহাসে উনিশ শতক একটি গুরুত্বপূর্ণ স্থান অধিকার করে আছে। ইংরেজ শাসনের কিছুকাল পরেই পাশ্চাত্য শিক্ষার প্রভাব এসে পড়ে ভারতবর্ষে। ইউরোপের রেনেসাঁস ভারতীয়দের মনোরাজ্যে চিত্তের জাগরণ ঘটায়। তারই ফলস্বরূপ উনিশ শতকে ভারতীয়দের মধ্যে সমাজ সংস্কার আন্দোলন, নতুন ধর্মচিন্তা, মানবিক অধিকার বোধের চিন্তা সুস্পষ্ট হয়ে উঠে। আধুনিক যুগে নারীর স্বতন্ত্র মানবিক ভূমিকা স্বীকৃত হয় পাশ্চাত্যে। এই পাশ্চাত্যের প্রভাবেই ভারতীয় নারীরা আবার শিক্ষার আলো দেখার সুযোগ পায়। উনিশ শতকে ইংরেজ মিশনারীদের চেষ্টায় জুভেনাইল সোসাইটি, লেডিজ সোসাইটি, লেডিজ অ্যাসোসিয়েশন, শ্রীরাম পুর মিশন, নব্যবঙ্গ দল, স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারে কিভাবে অগ্রণী ভূমিকা গ্রহণ করেছিল এবং তৎকালীন ভারতীয় মনীষীগণ যথা বিদ্যাসাগর, কেশবচন্দ্র সেন, দ্বারকানাথ গঙ্গোপাধ্যায়, বঙ্কিমচন্দ্র, শশিপদ বন্দ্যোপাধ্যায়, স্বামী বিবেকানন্দ কিভাবে স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারে সাহায্য করেছিলেন, তা আলোচনা করাই এ প্রবন্ধের মুখ্য উদ্দেশ্য। আঠারো শতকের শেষে ও উনিশ শতকের প্রথম দশক পর্যন্ত বাংলার সমাজে স্ত্রী জাতির অবস্থা বিশেষ ভাল ছিল না। সতীদাহ প্রথা, বাল্যবিবাহ, কৌলিন্যপ্রথা, মেয়েদের শিক্ষা সম্পর্কে নানা কুসংস্কার প্রভৃতি নিয়ম নীতির জন্য স্ত্রী সমাজের অবস্থার অবনতি ঘটে। উনিশ শতকের দুই মহান পুরুষ রামমোহন রায় ও ঈশ্বরচন্দ্র বিদ্যাসাগর সর্বপ্রথম এই কুপ্রথাগুলি দূর করার জন্য এগিয়ে আসেন। রাজা রামমোহন রায় সর্বপ্রথম সতীদাহ প্রথা রোধ করার জন্য আন্দোলন শুরু করেছিলেন। তাঁর অক্লান্ত চেষ্টায় ১৯২৯ খ্রীষ্টাব্দে ৪ই জানুয়ারী সতীদাহ প্রথাকে নিষিদ্ধ ঘোষণা করা হয়। রামমোহন রায় প্রথম এ কথা বলেন যে, সমাজে ও রাষ্ট্রে নারীর অধিকার প্রতিষ্ঠিত করতে হলে সর্বপ্রথম মেয়েদের শিক্ষা দরকার। বাল্যবিবাহ রোধ, বিধবা বিবাহ প্রচলন এবং স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারের আর এক স্মরণীয় ব্যক্তিত্ব হলেন ঈশ্বরচন্দ্র বিদ্যাসাগর। এছাড়া উনিশ শতকের প্রথম দিকের স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারের উদ্যোগী প্রমুখ ব্যক্তিগণ হলেন রাজা রাধাকান্ত দেব, রাজা বৈদ্যনাথ রায়, গৌরমোহন তর্কালঙ্কার।

১৮১৩ খ্রীষ্টাব্দে ব্রিটিশ পার্লামেন্ট বা গর্ভমেন্ট থেকে ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানি যে নতুন হুকুমনামা পেয়েছিলেন। সেখানে অনান্য নিয়মের মতো দুটি গুরুত্বপূর্ণ বিষয় নির্ধারিত হয়েছিল ১. শিক্ষাখাতে ভারতের রাজস্ব থেকে প্রতিবছর একলক্ষ টাকা ব্যয়। ২. এদেশে খ্রীষ্টান পাদ্রীদের অবাধ গতিবিধি। প্রথমটি থেকে স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারের সে রকম সুবিধা না হলেও দ্বিতীয় বিষয়টি দ্বারা স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারের পথ

চলা শুরু হয়েছিল। ১৮১৪ খ্রীষ্টাব্দে চুঁচুড়াতে একটি বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠা করেন রবার্ট মে নামে এক খ্রীষ্টান মিশনারী। এছাড়া অনান্য খ্রীষ্টান মিশনারীদের প্রচেষ্টায় কলকাতা ও তার নিকটবর্তী অঞ্চলগুলিতে স্ত্রীশিক্ষার জন্য বহু শিক্ষালয় প্রতিষ্ঠিত হয়েছিল। খ্রীষ্টান পাদ্রীদের স্ত্রীগণ ও অনান্য ইউরোপীয় মহিলারা বাংলাদেশে স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারে অগ্রণী ভূমিকা গ্রহণ করেছিলেন। তাঁরা বিভিন্ন খৃষ্টান সম্প্রদায়ের অধীনে, কখনো বা স্বতন্ত্রভাবে সোসাইটি বা সংঘ প্রতিষ্ঠা করেন। এই সোসাইটি বা সংঘের মাধ্যমে তাঁরা অবৈতনিক বালিকা বিদ্যালয় স্থাপন করেন। এই কাজে বিশেষ সাহায্য করেছিলেন রাজা রাধাকান্তদেব এবং রাজা বৈদ্যনাথ রায়। কলকাতার ব্যাপটিস্ট মিশনের পাদ্রীগণ ১৮১৯ খ্রীষ্টাব্দের এপ্রিলমাসে মিসেস পীয়ার্স এবং মিসেম লসনের বিদ্যালয়ের শিক্ষিকাদের অনুরোধ করেন বাঙালি বালিকাদের শিক্ষাদানের উদ্দেশ্যে বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠার জন্য সংঘবদ্ধ হতে। এই শিক্ষিকারা কয়েক মাসের মধ্যে অনান্য ইউরোপীয় মহিলা ও মিশনারীদের সাহায্যে একটি সোসাইটি প্রতিষ্ঠা করেন। যার নাম ফিমেল জুভেনাইল সোসাইটি। এই সোসাইটির পুরো নাম "The Female Juvenile Socity for the Establishment and support of Bengali Female Schools". এই সোসাইটির সভাপতি হয়েছিলেন কলিকাতা স্কুল সোসাইটির সম্পাদক ও ব্যাপটিস্ট মিশনের পাদ্রী ডবলিউ.এইচ. পীয়ার্স। মাসিক বা বার্ষিক চাঁদা দিলে যে কেউ এই সোসাইটির সদস্য হতে পারতেন। সভাপতি ও চৌদ্দজন মহিলা নিয়ে একটি কার্যনিবাহক সমিতি গঠিত হল। এঁদের মধ্যে একজন ছিলেন কোষাধ্যক্ষ, দুজন সম্পাদক ও একজন চাঁদা সংগ্রাহক। সবৈতনিক বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠার মাধ্যমে স্ত্রী শিক্ষার প্রসারে প্রথম এগিয়ে আসেন জুভেনাইল সোসাইটি।

আজ থেকে দুশ বছর আগে ১৮১৯ সালে কলকাতার গৌরী বাড়িতে বাঙালি মেয়েদের জন্য ফিমেল জুভেনাইল সোসাইটির দ্বারা প্রথম বালিকা বিদ্যালয় স্থাপিত হয়। প্রথম বছর ছাত্রী সংখ্যা ছিল আট। কিন্তু ১৮২১ সালে ছাত্রী সংখ্যা হয়ে দাঁড়াল বত্রিশ। তবে এই ছাত্রীদের মধ্যে অনেক ছিলেন বয়স্ক, ব্রাহ্মণ, কায়স্থ, বাগদি, বৈষ্ণব ও চণ্ডাল জাতের মহিলারা। পরবর্তীকালে কলকাতার বিভিন্ন অঞ্চলে আরো কয়েকটি বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠিত হয় এই বিদ্যালয়গুলির নামের ও এক বিশেষ বৈশিষ্ট্য ছিল। যে যে স্থানের মহিলাদের অর্থে বিদ্যালয় স্থাপিত হত, ঐ স্থানের নাম ঐ বিদ্যালয়ের নামের সঙ্গে জুড়ে দেওয়া হত। যেমন লিভারপুর স্কুল, সালেম স্কুল, বার্মিংহাম স্কুল। হিন্দু প্রধানদের মধ্যে রাজা রাধাকান্ত দেব মহাশয় জুভেনাইল সোসাইটির ছাত্রীদের বিশেষ উৎসাহ দিতেন। তিনি ছিলেন কলিকাতা স্কুল সোসাইটির দেশীয় সম্পাদক। তাঁর শোভাবাজার রাজবাড়িতে জুভেনাইল সোসাইটির ছাত্রীরা ত্রৈমাসিক ও বাৎসরিক পরীক্ষা দিতে আসত। ১৮২৩ সালে সোসাইটির বিদ্যালয় ছিল সংখ্যায় আটটি। এই বছরেই জুভেনাইল সোসাইটির বেঙ্গল ক্রিশ্চিয়ান স্কুল সোসাইটির মহিলা বিভাগে পরিণত হয়। ১৮২৩ সালে ১৯ ডিসেম্বর কলকাতার গৌরী বাড়িতে সোসাইটির ছাত্রীদের পরীক্ষা হয়। সেখানে হিন্দু ও মুসলমান ছাত্রী মিলে প্রায় একশ চল্লিশ জন ছাত্রী পরীক্ষাতে যোগদান করে। সে যুগে এই ধরনের পরীক্ষায় সমাজের গণ্যমান্য ব্যক্তিগণ ও সংবাদ পত্রের সম্পাদকরা নিয়মিত উপস্থিত থাকতেন। পাদ্রী উইলিয়ম কেরী, উইলসন

জেটার প্রমুখ ব্যক্তিগণ ছাত্রীদের লিখন পঠন ও কর্মবিন্যাসের পরীক্ষা নিতেন। ছাত্রীদের ছয় শ্রেণীতে বিভক্ত করা হত। ছয় শ্রেণীর বিভিন্ন পাঠ্যক্রম ছিল। প্রথম শ্রেণীতে বর্ণমালা, দ্বিতীয় ও তৃতীয় শ্রেণীতে জেটারের স্পেলিং বা বর্ণবিন্যাসের বই। চতুর্থ শ্রেণীতে মাতা ও কন্যার কথোপকথন। নীতিকথা ও পীয়ার্সসনের স্পেলিং বই, পঞ্চম শ্রেণীতে মাতা ও কন্যার কথোপকথন, নীতিকথা প্রথম ও দ্বিতীয় ভাগ এবং পীয়ার্সনের স্পেলিং বই আর ষষ্ঠ শ্রেণীতে পীয়ার্সসনের মাতাও কন্যার কথোপকথন, স্ত্রীশিক্ষা বিধায়ক, পীয়ার্সের ভূগোল বিষয় পড়ানো হত। এছাড়া ছাত্রীদের সূচীশিল্প শেখানোর ব্যবস্থা ছিল। মিসেস কোলম্যানের পরিচালনায় বিদ্যালয়গুলি খুব উন্নতি লাভ করেছিল। ১৮২৬ সালে ১৬ই জানুয়ারী জুভেনাইল স্কুলগুলির পরীক্ষা গ্রহণের বিবরণ পাওয়া যায় গর্বনমেন্ট গেজেটের ১৮২৬ সনের ২৬ জানুয়ারী সংখ্যায়। কলকাতার দক্ষিণ বিভাগের বিদ্যালয়ের ছাত্রীরা পরীক্ষা দেয় খিদিরপুরে আর উত্তর বিভাগের বিদ্যালয়ের একশ জন ছাত্রী পরীক্ষা দেয় বেনাভোলেন্ট ইনস্টিটিউশনে। ইয়েটস, পীয়ার্সি ও পিকার্ডের সাহায্যে পাত্রী উইলসন ছাত্রীদের পরীক্ষা নিয়েছিলেন। তখন উচ্চতর তিনশ্রেণীতে বাইবেলের অংশ বিশেষ এক খৃষ্টধর্ম সংক্রান্ত অনান্য পুস্তক থেকে নানা প্রশ্ন তুলে পরীক্ষকগণ ছাত্রীদের পরীক্ষা নিতেন। ১৮২৯ সলে জুভেনাইল সোসাইটির বিদ্যালয় সংখ্যা হয়ে দাঁড়ায় কুড়িটি। ১৮৩২ সালে জুভেনাইল সোসাইটির নাম পরিবর্তিত হয়ে নতুন নামকরণ হয় 'ক্যালকাটা ব্যাপটিস্ট ফিমেল স্কুল সোসাইটি'। ১৮৩২ সনের ডিসেম্বর মাসে 'দি ক্যালকাটা ক্রিশ্চিয়ান অবজার্ভার' প্রকাশিত হলে জুভেনাইল সোসাইটির নতুন নামকরণ পাওয়া যায়। এছাড়া এই সোসাইটির কলকাতা ও তাঁর নিকটবর্তী অঞ্চলে মোট সাতটি স্কুল ছিল। মিসেস্ ডব্‌লিউ এইচ পীয়ার্সি, মিসেস ইয়েট্‌স, মিসেস পেসী এবং মিসেস টমাস এই স্কুলগুলির তত্ত্বাবধান করতেন। এই সাতটি স্কুলের ছাত্রী সংখ্যা ছিল দেড়শত। চিৎপুরে জি. পীয়ার্সের তত্ত্ববধানে একটি কেন্দ্রীয় স্কুল ছিল। এখানকার ছাত্রী সংখ্যা একশ কুড়িজন, কাটোয়াতে একটি স্কুল পরিচালিত করতেন মিসেস ডব্‌লিউ কেরী এখানকার ছাত্রী ছিল দুশজন। মিসেস উইলিয়মসন বীরভূমে চারটি স্কুল চালাতেন তাঁর ছাত্রী সংখ্যা ছিল ষাট জন। এইভাবে ফিমেল জুভেনাইল সোসাইটির স্কুলগুলিতে ছাত্রীদের বাংলা মাধ্যমে অবেতনে শিক্ষা দেওয়া হত। এই স্কুলগুলিতে ইংরেজী শিক্ষা দেওয়া হতনা। কিন্তু কিছু বছর পর এই স্কুলগুলিতে খ্রীষ্টধর্ম প্রচার করা প্রধান উদ্দেশ্য হয়ে পড়লে উচ্চবর্ণের দরিদ্র হিন্দু মেয়েরা এসব স্কুল ছেড়ে দেয় এক নিম্নশ্রেণীর ছাত্রীরা এখানে শিক্ষা গ্রহণ করত। তবুও উনিশ শতকের প্রকাশ্যে স্ত্রী বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠায় জুভেনাইল সোসাইটির বিশেষ অবদান ছিল।

দেশে বিদেশে শিক্ষা বিস্তারের উদ্দেশ্যে লন্ডনে 'ব্রিটিশ অ্যান্ড ফরেন স্কুল সোসাইটি নামে একটি সংঘ ছিল। কলকাতার স্কুল সোসাইটিকে সাহায্য করার জন্য এই সোসাইটি ১৮২১ সনের নভেম্বর মাসে কুমারী অ্যান্ কুককে কলকাতায় পাঠান। তখন সম্ভ্রান্ত পরিবারের মেয়েদের প্রকাশ্য বিদ্যালয়ের শিক্ষা দানের রীতি ছিল না। তাই কলিকাতা স্কুল সোসাইটি কুমারী কুকের সাহায্য নিতে পারে না। তবে কলিকাতা স্কুল সোসাইটি দেশীয় সম্পাদক রাধাকান্ত দেবের পরামর্শে চার্চ মিশনারী সোসাইটি তাদের পূর্ব স্থাপিত

বিদ্যালয়ের সঙ্গে মিসেস কুককে নিযুক্ত করলেন।

চার্চ মিশনারী সোসাইটির সাহায্যে কুমারী কুক ঠন্ঠনিয়া, মির্জাপুর, শোভাবাজার, কৃষ্ণবাজার, মল্লিক বাজার ও কুমারটুলিতে কয়েকটি নতুন অবৈতনিক বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠা করতে সমর্থ হলেন। এতে স্থানীয় অধিবাসীরাও মিসেস কুককে সাহায্য করলেন। এরমধ্যে সোসাইটির পাদ্রী আইজ্যাক উইলসনের সঙ্গে কুমারী কুকের বিবাহ হয়ে যায়। তারপর কুমারী কুক মিসেস উইলসন নামে পরিচিত হলেন। ১৮২৪ সনে বালিকা বিদ্যালয়ের সংখ্যা চব্বিশ হয়ে যায়। তখন চার্চ মিশনারী সোসাইটি এ স্কুলগুলির পরিচালনা নিজেদের হাতে না রেখে তাদের অধীনে মহিলা দ্বারা গঠিত এক লেডিজ সোসাইটির হাতে অর্পণ করেন। ১৮২৪ খ্রীষ্টাব্দে ২৫শে মার্চ চার্চ মিশনারী সোসাইটির সহযোগিতায় এই লেডিজ সোসাইটি প্রতিষ্ঠিত হয়। এর পুরা নাম 'Ladies Society for Native Female Education in Calcutta and its vicinity'। এই সোসাইটির কাজ হল মিশনারী বিদ্যালয়গুলির পরিচালনা এবং একটি সেন্ট্রাল স্কুল প্রতিষ্ঠার উদ্যোগ করা। তৎকালীন বড় লাট পত্নী লেডী আমহার্স্ট সোসাইটির পৃষ্ঠপোষক হলেন। সরকারী পৃষ্ঠপোষক হলেন আটজন। তেরোজন শ্বেতাঙ্গ মহিলা নিয়ে কমিটি গঠিত হয়। সোসাইটির সম্পাদিকা হলেন মিসেস এলারটন এবং তত্ত্বাবধায়ক মিসেস উইলসন। তবে একথা স্থির হল যে লেডিজ সোসাইটি উঠে গেলে স্কুলগুলি আবার চার্চ মিশনারী সোসাইটির হাতে চলে আসবে। বার্ষিক বত্রিশ টাকা চাঁদা দিলেই লেডিস সোসাইটির সাধারণ সদস্য হওয়া যেত। A Biographical Sketch of David Hare গ্রন্থে প্যারীচাঁদ মিত্র বলেন অনেক হিন্দুও এই চাঁদা দিয়ে সাধারণ সদস্য হয়েছিল। চব্বিশটি বিদ্যালয় এবং চারশ ছাত্রী নিয়ে লেডিজ সোসাইটি কার্য শুরু করে দেন। ছাত্রীরা ইতিহাস, ভূগোল, গণিত প্রভৃতি বিষয় বাংলা মাধ্যমে শিক্ষা গ্রহণ করত। উচ্চশ্রেণীতে 'স্ত্রীশিক্ষা বিধায়কে'র কোনো কোনো অধ্যায় পড়ানো হত এবং ছাত্রীদের সূচীকর্মের শিক্ষা দেওয়া হত। ছাত্রীদের বার্ষিক পরীক্ষায় যেসব হিন্দু প্রধান উপস্থিত থাকতেন তাদের মধ্যে অন্যতম রাজা রাধাকান্ত দেব, রাজা বৈদ্যনাথ রায়, রাজা শিব কৃষ্ণ, নীলমনি দাস কৃষ্ণসখা ঘোষ এবং কাশীনাথ ঘোষালের নাম উল্লেখযোগ্য। তাঁরা ছাত্রীদের নানাভাবে উৎসাহিত করতেন। উৎকৃষ্ট ছাত্রীর পুরস্কারস্বরূপ সিকি, আধুলি পয়সা এবং শাড়ি পেত।

'লেডিজ সোসাইটির' অন্য প্রধান উদ্দেশ্য ছিল একটি সেন্ট্রাল বিদ্যালয় বা কেন্দ্রীয় বিদ্যালয়ের প্রতিষ্ঠা। লেডিজ সোসাইটি এই উদ্দেশ্যে একটি ভান্ডার খুলে কলকাতা বোম্বাই ও লন্ডনে চাঁদা তোলার ব্যবস্থা করলেন। এই প্রসঙ্গে রাজা বৈদ্যনাথ রায়ের নাম বিশেষ উল্লেখযোগ্য। কেননা তিনি সেন্ট্রাল ফিমেল স্কুলের প্রতিষ্ঠাকল্পে গৃহ নির্মাণের জন্য এককালীন কুড়ি হাজার টাকা সোসাইটিকে দান করেন। রাজা বৈদ্যনাথ রায়ের রাণী ও স্ত্রী শিক্ষার পক্ষপাতী ছিলেন। তিনি বাড়িতে মিসেস উইলসনের নিকট ইংরেজী শিখতেন। তিনিও এই সেন্ট্রাল ফিমেল স্কুলের প্রতিষ্ঠায় উৎসাহী ছিলেন। ১৮২৬ সালের ১৮মে সমারোহ সরকারে কলিকাতা সেন্ট্রাল ফিমেল স্কুলের ভিত্তিপ্রস্তর স্থাপন করেন বড়লাট পত্নী আমহার্মট।

১৮২৮ সালের ১লা এপ্রিল মিসেস উইলসন দ্বারা সেন্ট্রাল স্কুল উন্মোচিত হয়। এই সেন্ট্রাল স্কুলে বাংলা ভাষার মাধ্যমে শিক্ষাদান করা হত। সেন্ট্রাল ফিমেল স্কুলে মনিটর বা দেশীয় শিক্ষিকাদের জন্য একটি নতুন শ্রেণী খোলা হয়। পাদ্রী জেমস লঙ সাহেব তাঁর 'Hand book of bengal mission' গ্রন্থে এই ছাত্রীদের সম্পর্কে বলেছেন—তারা ছিলেন বিধবা ও স্বামী পরিত্যক্তা। তারা পূর্বে সোসাইটির স্কুলে পড়াশোনা করতেন। তারা এসে মিসেস উইলসনের কাছে আশ্রয় নেয়। তারা এই শ্রেণীতে থেকে শিক্ষা লাভ করতেন। এই শ্রেণীটিই পরবর্তীকালে 'স্ত্রীনর্মাল' বিদ্যালয়ের সূচনা করে। ১৮৩৬ সাল পর্যন্ত মিসেস উইলসন সেন্ট্রাল ফিমেল স্কুলের তত্ত্বাবধান করেন। পরে ১৮৩৭ সালে মিসেস টমসন ও মিসেস হোয়াইট এই স্কুলের তত্ত্বাবধান ভার গ্রহণ করেন। ১৮৪০ সালে লেডিজ সোসাইটি সেন্ট্রাল ফিমেল স্কুল ছাড়া আরও তিনটি স্কুল পরিচালনা করতেন। সেই তিনটি স্কুল হল মির্জাপুর স্কুল, সারকুলার রোড স্কুল এবং হাওড়া স্কুল। এই চারটি স্কুলে ছাত্রী সংখ্যা ছিল প্রায় পাঁচশ জন। পরবর্তীকালে লেডিজ সোসাইটির কাজ ক্রমেই সংকুচিত হয়ে পড়ে। ১৮৫২ সালে ২৫ ফেব্রুয়ারী দেশীয় শিক্ষিকা তৈরীর জন্য একটি নর্মাল স্কুল প্রতিষ্ঠিত হয়েছিল। ১৮৫৭ সালে সেন্ট্রাল ফিমেল সঙ্গে নর্মাল স্কুল মিলিত হয়ে তার নতুন নাম হল—"Normal Central and Branch School.

জুভেনাইল সোসাইটি ওলেডিজ সোসাইটির মতো উনিশশতকে স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারে উল্লেখ যোগ্য কাজ করেছিলেন 'লেডিজ অ্যাসোসিয়েশন-' এর পুরা নাম দিল 'Calcutta Ladies Association for Native Female Education' ১৮২৫ সালের ১৪ই জানুয়ারী কয়েকজন ইউরোপীয় মহিলা মিলে এই অ্যাসোসিয়েশন বা সভা প্রতিষ্ঠা করেন। এই সভারও দুটি উদ্দেশ্য ছিল ১. লেডিজ সোসাইটির দ্বারা প্রস্তাবিত সেন্ট্রাল ফিমেল স্কুলের জন্য অর্থ সংগ্রহ। ২. লেডিজ সোসাইটির স্কুল যেসব অঞ্চলে ছিলনা সেসব স্থানে বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠা করা। লেডিজ অ্যাসোসিয়েশন ছিল লেডিজ সোসাইটির সাহায্যকারী প্রতিষ্ঠান। মিসেস উইলসন এই সভার অধিনেত্রী ছিলেন। বার্ষিক বারো টাকা চাঁদা দিয়ে এই সভার সদস্য হওয়া যেত। ইন্টালী ও জানবাজার অঞ্চলে প্রায় দশটি স্কুল প্রতিষ্ঠিত করেছিল এই অ্যাসোসিয়েশন। কিন্তু তিন বৎসরের মধ্যে অর্থের অভাবে কয়েকটি স্কুল বন্ধ হয়ে যায়। বাকি স্কুল গুলি একত্র করিয়া দুটি বড় স্কুল গঠিত হয় একটি বেনেটোলায় এবং অন্যটি চাঁপাতলায়। প্রথমটিতে চল্লিশজন, অন্যটি প্রায় পঁচিশজন ছাত্রী প্রতিদিন উপস্থিত হত। এখানে ছাত্রীদের বাংলা মাধ্যমে পড়ানো হত এবং সূচীকর্মের শিক্ষাও দেওয়া হত। এই অ্যাসোসিয়েশন দশ বছর চলে তারপর ১৮৩৪ সালে তা বন্ধ হয়ে যায়।

উনিশ শতকে স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারের সহায়ক একটি উল্লেখ্য প্রতিষ্ঠানের নাম হল শ্রীরামপুর মিশন। উইলিয়াম কেরী, জোসুয়া মার্শম্যান ও উইলিয়াম ওর্য়াড এই তিনজন মিলে ১৮০০ সনে শ্রীরামপুর মিশন প্রতিষ্ঠা করেন। ১৮২৮ সনের ফেব্রুয়ারী সংখ্যা Missionary Intelligence মাসিক পত্রিকায় শ্রীরাম মিশন দ্বারা পরিচালিত বালিকা বিদ্যালয়ের এক বিস্তৃত বিবরণ পাওয়া যায়। শ্রীরাম মিশন এলাহাবাদ থেকে

আরকান পর্যন্ত বিভিন্ন কেন্দ্রে বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠা করেছিল। শ্রীরামপুর মিশন প্রতিষ্ঠিত বালিকা বিদ্যালয়গুলিরও নামের একটি বৈশিষ্ট্য ছিল। জুভেনাইল সোসাইটির স্কুলের মতো চাঁদা দাতাদের বাসস্থানের নাম অনুসারে স্কুলের নাম রাখা হত। যেমন রসস্কুল, কার্ডিক স্কুল, গ্লাস্‌গো স্কুল, স্টালিংস্কুল প্রভৃতি। শ্রীরামপুর মিশন দ্বারা ঢাকায় সাতটি স্কুল, চট্টগ্রামে ৫টি স্কুল, ছাড়াও যশোহর, আকিয়ার কাশী ও এলাহাবাদে একটি করে বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠিত হয়েছিল। মিশনারী স্কুলগুলি বন্ধ হয়ে যাবার একমাত্র কারণ ছিল পাঠক্রমে বাইবেল ও খৃষ্টধর্ম সংক্রান্ত পুস্তক স্থান পেয়েছিল। এই সকল পুস্তকের পাঠ আব্যশিক ছিল এবং পরীক্ষাকালে এই পুস্তকগুলি পরীক্ষা নেওয়া হত। এই কারণে হিন্দু প্রধানরা মিশনারী থেকে আলাদা হয়ে যান। তাই উচ্চশ্রেণীর দরিদ্র হিন্দুরাও তাঁদের কন্যাদের আর পাঠাতেন না।

ডিরোজিও শিক্ষায় শিক্ষিত হিন্দু কলেজের ছাত্রেরা নব্যবঙ্গ নামে পরিচিত ছিল। এরাও সকল বিষয়ে স্বাধীন প্রগতিশীল মত পোষণ করতেন। স্ত্রী শিক্ষা প্রসারে নব্যবঙ্গ সমাজ এক অগ্রনী ভূমিকা গ্রহণ করেছিল। রামগোপাল ঘোষ নব্যবঙ্গের একজন প্রধান নেতা ছিলেন। তিনি স্ত্রীশিক্ষা বিস্তারে উৎসাহ প্রকাশ করেছিলেন। সে সময় নব্যবঙ্গ দলের যে নেতারা স্ত্রীশিক্ষা বিস্তারে তৎপর ছিলেন তারা হলেন রামগোপাল ঘোষ, কৃষ্ণমোহন বন্দ্যোপাধ্যায়, শিবচন্দ্রদেব, এবং দেবেন্দ্রনাথ ঠাকুর। এঁরা স্ত্রী শিক্ষা বিষয়ে সভা সমিতিতে আলাপ আলোচনা করতেন এবং ব্যক্তিগত ভাবে কেউ কেউ নিজের বাড়ীর মহিলাদের ইংরেজি ও বাংলা ভাষায় লেখাপড়ায় উদ্যোগী ছিলেন। প্যারীচাঁদ মিত্র ও রাধামোহন শিকদার মহাশয় একযোগে ১৮৫৪ সালে আগষ্ট মাসে 'মাসিক পত্র' নামে এক আনা মূল্যের সহজ স্ত্রীপাঠ্য মাসিকপত্রিকা প্রকাশ করেছিলেন।

এদেশীয় হিন্দুদের উদ্যোগে প্রথম বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠিত হয় ১৮৪৭ সালে বারাসতে। এর উদ্যোক্তা ছিলেন কালীকৃষ্ণ মিত্র ও তাঁর ভাই নবীনকৃষ্ণ মিত্র। তাঁদের এই দু:সাহসিক কাজের অপরাধে বারাসতবাসী এঁদের উপর সামাজিক নির্যাতন চালায় এবং একঘরে করে দেয়।

এই সময় ১৮৪৮ খ্রীষ্টাব্দের এপ্রিল মাসে বড়লাট আইন পরিষদের সদস্য হয়ে কলকাতায় আসেন জন এলিয়ট ড্রিঙ্কওয়াটার বিটন। পরবর্তীকালে তিনি বেথুন সাহেব নামে খ্যাত ছিলেন। তিনি কেমব্রিজ বিশ্ব বিদ্যালয়ে ব্যবহার শাস্ত্র অধ্যয়ন করেন এবং পড়াশোনার শেষে উকালতিতে সুনাম অর্জন করেন। ভারতে এসে তিনি Council of Education বা শিক্ষা সমাজের সভাপতি হন। নব্যবঙ্গের মুখপাত্র রামগোপাল ঘোষ সেই বছরেই তিনি শিক্ষা সমাজের সদস্যপদে নিযুক্ত হন। বেথুন সাহেব এদেশে এসে নারীশিক্ষার কল্যানে নিজেকে নিয়োজিত করেন। স্ত্রী শিক্ষার বিস্তারে কলকাতায় একটি বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠার সংকল্প করেন। তাঁর মনের ইচ্ছা প্রকাশ করেন রামগোপাল ঘোষ এর কাছে। এই স্কুল প্রতিষ্ঠায় তাঁকে বিশেষ সাহায্য করলেন দক্ষিনা রঞ্জন মুখোপাধ্যায়। তিনি বালিকা বিদ্যালয়ের জন্য নিজে সুকিয়া স্ট্রীটের বৈঠকখানাটি বিনা ভাড়ায় ছেড়ে দেন পরে সেটি ১৮৪৯ সালে ৭ই মে ক্যালকাটা ফিমেল স্কুল নামে

প্রতিষ্ঠিত হয়। সম্ভ্রান্ত ঘরের মেয়েরাই এতে পড়াশোনা করবে এই ছিল বেথুন সাহেবের ইচ্ছা। এই বিদ্যালয়টি ধর্ম প্রচারের উদ্দেশ্যে নয় শুধুমাত্র বিদ্যাদানের উদ্দেশ্যে স্থাপিত হয়েছিল। বেথুন সাহেব এইদেশীয়দের মাতৃ ভাষাচর্চার উপর বিশেষ জোর দিতেন, তাই এই স্কুলের শিক্ষার মাধ্যম ছিল বাংলা। বই পত্তর ছাত্রীদের বিনামুল্যে দেওয়া হোত। সেখানে কোন বেতন নেওয়া হত না। বেথুন সাহেব নিজেই বিদ্যালয় পরিচালনার জন্য প্রতিমাসে ৮০০ টাকা খরচ করতেন। বিদ্যালয়ের প্রথম ছাত্রী সংখ্যা ছিল একুশজন। বেথুন কে বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠায় যাঁরা সাহায্য করেছিলেন তাঁরা হলেন রামগোপাল ঘোষ, দক্ষিনারঞ্জন মুখোপাধ্যায় ও পণ্ডিতবর মদনমোহন তর্কালঙ্কার। তিনি তাঁর দুই কন্যা ভুবনমালা ও কুন্দমালাকে এই স্কুলে ভর্তি করেদিলেন। তাছাড়া তিনি কিছুদিন বিনাবেতনে এ বিদ্যালয়ে পড়াতেন ও তাদের পাঠের উপযোগী বাংলা পাঠ্য পুস্তক রচনা করেদিলেন। তিনি সর্বশুভঙ্করী পত্রিকায় স্ত্রীশিক্ষা নামে এক দীর্ঘ প্রবন্ধ লেখেন। যাতে স্ত্রী ও পুরুষকে একই শিক্ষাদানের সমর্থন করেছিলেন। ড: স্বপন বসু 'বাংলা নবচেতনার ইতিহাস' গ্রন্থে বলেছেন মদনমোহনের দৃষ্টান্ত অনুসরণ করে তারানাথ বাচস্পতি, শম্ভুনাথ পণ্ডিত, দেবেন্দ্রনাথ ঠাকুর প্রমুখ বিদ্যানুরাগী ব্যক্তি তাঁদের মেয়েদের স্কুলে ভর্তি করে দেন। গোবিন্দচন্দ্র গুপ্ত, দ্বারকানাথ গুপ্ত, দক্ষিনারঞ্জন মুখোপাধ্যায়, প্যারীচাঁদ মিত্র, হেমনাথ রায়, রসিক লাল সেন, মাধবচন্দ্র মল্লিক, হরিনারায়ণ দে, দেবনারায়ণ দে, হরিমোহন চট্টোপাধ্যায়, গৌরীশঙ্কর ভট্টাচার্য্য ও হরকুমার বসু নিজ নিজ কন্যা ও ভগিনীকে ভর্তি করে দেন।

'সংবাদ প্রভাকর', 'সংবাদ ভাস্কর', সমাচার দর্পণ; 'সংবাদ রসরাজ', 'সংবাদ পূর্ণচন্দ্রোদয়' এক অধিকাংশ ইংরেজি পত্রিকা বেথুনের এই প্রয়াসকে স্বাগত জানিয়ে স্ত্রী শিক্ষার সমর্থনে লেখালেখি আরম্ভ করেন। তবে অনেক বাংলা পত্রিকা এর বিরোধিতা করেন যেমন 'সমাচার চন্দ্রিকা' হিন্দু ইন্টেলিজেন্স' এ ছাড়া কিছু রক্ষনশীল হিন্দুরাও এর সমর্থন করেন নি যেমন রামনারায়ণ তর্করত্ন, ভবানীচরণ বন্দ্যোপাধ্যায়। সমস্তরকম প্রতিকূলতার মধ্যে বেথুন সাহেব স্কুল চালু রাখেন। বেথুন প্রতিষ্ঠিত বিদ্যালয়ের স্থায়ী স্কুল ভবন নির্মাণের জন্য দক্ষিণারঞ্জন মুখোপাধ্যায় মির্জাপুরে একটি ভূমিখন্ড দান করেছিলেন। বেথুন সাহেব ও ঐ ভূমির কাছে ১০ হাজার টাকা দিয়ে আর একটি ভূমিখন্ড কিনেছিলেন। কিন্তু মির্জাপুর নগরের প্রান্তভাগে অবস্থিত ছিল। মেয়েদের যাতায়াতের সুবিধার কথা চিন্তা করে বেথুন সাহেব বাংলা সরকারের কাছে হেদুয়া পুকুরের পশ্চিম পার্শ্বের জমিটি নিয়ে বাংলা সরকারকে তার বদলে মির্জাপুরের জমিটি দিয়ে দেন। ১৮৫০ সালে ৬ই নভেম্বর হেদুয়ার জমির উপর বিদ্যালয়ের ভিত্তি প্রস্তর স্থাপন করেন। বাংলার ডেপুটি গর্ভনর স্যার জন হান্টার লিট্‌লার ভিত্তি প্রস্তর স্থাপনের পৌরহিত্য করেন। ভিত্তি প্রস্তরে সঙ্গে যে তাম্রফলক প্রোথিত করা হয়েছিল তাতে বিদ্যালয়ের নাম দিল 'Hindu Female School' ক্যালকাটা ফিমেল স্কুল হিন্দু ফিমেল স্কুল নামে পরিচিত ছিল। ১৮৫০ সালের ডিসেম্বর মাসে ঈশ্বরচন্দ্র বিদ্যাসাগর মহাশয় এই স্কুলের অবৈতনিক সম্পাদক ছিলেন। বিদ্যাসাগর মহাশয় বহু সম্ভান্ত ব্যক্তিদের নিজ নিজ কন্যাকে এই বিদ্যালয়ে পাঠাতে সম্মত করেন। ১৮৫১ সালের জুলাই মাসে মহর্ষি দেবেন্দ্রনাথ ঠাকুর তাঁর প্রথম কন্যা সৌদামিনী

দেবীকে এই স্কুলে ভর্তি করে দেন। ১৮৫১ সালে ৮ জুলাই রাজনারায়ণ বসুকে এক পত্রে লেখেন আমি বেথুন সাহেবের বালিকা বিদ্যালয়ে সৌদামিনীকে প্রেরণ করিয়াছি, দেখি এ দৃষ্টান্তে কি ফল হয় (পত্রাবলী ৩০ নং পত্র)। এই সময় বিদ্যালয়ের ছাত্রী সংখ্যা ছিল আশীজন। রাজা কালীকৃষ্ণ বাহাদুর বিদ্যালয়ের পরিচালক সভার সভাপতি ছিলেন। বেথুন সাহেব সম্পূর্ণ বিদ্যালয় ভবন নির্মাণ দেখে যেতে পারেন নি। ১৮৫১ সালের ১২ আগস্ট তিনি মারা যান। তিনি তাঁর উইলে সমস্ত স্থাবর অস্থাবর সম্পত্তিতে ত্রিশ হাজার টাকা বিদ্যালয়ের জন্য দান করে যান। বেথুন সাহেবের মৃত্যুর পর বিদ্যালয়ের অবস্থা খারাপ হতে থাকে। তৎকালীন বড়লাট লর্ড ডালহৌসী এবং তাঁর পত্নী লেডী ডালহৌসী বিদ্যালয়টির প্রতি সহানুভূতি সম্পন্ন ছিলেন। বেথুন সাহেবের মৃত্যুর পর বড়লাট লড ডালহৌসী এই স্কুলের ব্যয়ভার গ্রহণ করেন। তারপর যতদিন তিনি ভারতে ছিলেন ততদিন নিজেই এর ব্যয়ভার চালাতেন। ডালহৌসী ১৮৫৬ সালে ৬ই মার্চ ভারতবর্ষ পরিত্যাগ করেন। তারপর বেথুন স্কুলের পরিচালনার ভার গর্ভমেন্ট গ্রহণ করেন। ১৮৬২ খ্রীষ্টাব্দে হিন্দু ফিমেল স্কুলের নাম পরিবর্তন করে নাম রাখা হয় বেথুন স্কুল। বেথুন বালিকা বিদ্যালয়ের সম্পাদক পদ গ্রহণ করার পর বিদ্যাসাগর মহাশয় মেয়েদের স্থায়ী সমাধানের কথা চিন্তা করে স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারে উদ্যোগী হন। ১৮৫৭ সালে ১৫ই এপ্রিল বর্ধমান জেলার জৌগ্রামে একটি বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠা করেন। যেখানে ছাত্রী সংখ্যা ২৮ জন। তৎকালীন বাংলার ছোটলাট হ্যালিডে বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠার ব্যাপারে বিদ্যাসাগরকে সমর্থন করেন। পরবর্তীকালে বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠায় সরকারি সাহায্য পাবেন একথা চিন্তা করে তিনি ১৮৫৭ খ্রীষ্টাব্দে ২৪ নভেম্বর থেকে ১৮৫৮ খ্রীষ্টাব্দে ১৫ই মে পর্যন্ত বর্ধমান মেদনীপুর হুগলী ও নদীয়া জেলার বিভিন্ন স্থানে মোট ৩৫টি বিদ্যালয় স্থাপন করেন। পরবর্তীকালে ঐ চার জেলায় আরো ১৫টি বিদ্যালয় স্থাপন করেন এবং এই ৫০টি বিদ্যালয়ের ব্যয়ভারের বহনের জন্য সরকারে কাছে আবেদন করেন কিন্তু বিদ্যাসাগর মহাশয় ভারত সরকারের লিখিত অনুমতি ছাড়া ঐ বিদ্যালয়গুলি প্রতিষ্ঠা করেছিলেন তাই শিক্ষা বিভাগের ডাইরেক্টর আর্থিক সাহায্য অনুমোদন করতে চাইলেন না। কারণ বিট্রিশ সরকার তখন সিপাহী বিদ্রোহের ব্যাপারে চিন্তিত ছিলেন। কিন্তু বিদ্যাসাগর মহাশয় বিদ্যালয়গুলির শিক্ষা চালিয়ে যেতে লাগলেন। নিজের উপার্জিত অর্থ ও বন্ধু বান্ধবের আর্থিক সাহায্যে বিদ্যালয়ের ব্যয় ভার চলতে লাগল। এছাড়া বিদ্যালয়গুলির ব্যয় ভার বহনের জন্য তিনি একটি নারী ভান্ডার খোলেন। পরবর্তীকালে সরকার এই বিদ্যালয়গুলির জন্য কিছু আর্থিক সহায়তা করেছিল। স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারে বিদ্যাসাগর মহাশয়ের অবদান অবিস্মরণীয়। স্ত্রী শিক্ষা বিষয়ে ব্রাহ্ম সমাজের বিশেষ ভূমিকা ছিল। ব্রাহ্ম সমাজের মধ্যে অন্যতম ছিলেন কেশবচন্দ্র সেন। স্ত্রী শিক্ষা প্রসারের জন্য মহিলা শিক্ষকের প্রয়োজনীয়তার কথা চিন্তা করে তিনি সর্বপ্রথম একদল দেশী শিক্ষিকা গড়ে তুলতে চাইলেন। ১৮৬৬ খ্রীষ্টাব্দে ১ ডিসেম্বর ব্রহ্মসমাজের এক সভার আহ্বান করেন। মেরি কার্পেন্টারের সহায়তায় ১৮৭১ খ্রীষ্টাব্দের ১লা ফেব্রুয়ারী মির্জাপুর স্ট্রিটে কেশব চন্দ্র সেন একটি 'ফিমেল নর্মাল স্কুল' প্রতিষ্ঠা করেন। এই স্কুলে তিনি মেয়েদের ব্যবহারিক জীবনের উপযোগী শিক্ষা ও বিজ্ঞান, নীতি শিক্ষার প্রতি গুরুত্ব দিয়েছিলেন।

মেয়েদের পাঠে উন্নতির জন্য নিয়মিত স্কুলে প্রতিযোগিতা মূলক রচনা ও পরীক্ষার আয়োজন করতেন। পুরস্কার প্রাপ্ত ছাত্রীদের লেখা 'বামাবোধিনী' পত্রিকায় প্রকাশ করার ব্যবস্থা হয়। তার এই বিদ্যালয় ১৮৭৮ খ্রীষ্টাব্দ পর্যন্ত চলেছিল।

১৮৭৯ খ্রীষ্টাব্দে কেশবচন্দ্র সেন 'মেট্রোপলিটান ফিমেল স্কুল' নামে একটি বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠা করেন। নারী সমাজের অগ্রগতির কথা চিন্তা করে তিনি আর্য নারী সমাজ গঠন করেন। মুখপত্র হিসাবে পরিচারিকা নামে একটি পত্রিকা বের করেন। মেট্রো পলিটান স্কুলে মেয়েদের সাহিত্য বিজ্ঞান, অঙ্ক ইত্যাদির সঙ্গে রন্ধন ও সেলাই শিক্ষা দেওয়া হত। ১৮৩৩ খ্রীষ্টাব্দে এই স্কুল ভিক্টোরিয়া কলেজ নামে অভিহিত হয়। কেশবচন্দ্র সেন ছাড়া এই সময় দ্বারকানাথ গঙ্গোপাধ্যায় মহাশয়ও স্ত্রী শিক্ষা বিষয়ে আন্দোলন করেছিলেন তিনি নারীদের চিকিৎসা বিদ্যায় শিক্ষা দেওয়ার প্রয়োজনীয়তার কথা বলেছিলেন। ১৮৭৩ খ্রীষ্টাব্দে বেনিয়াপুকুর লেনে 'হিন্দুমহিলা বিদ্যালয়' নামে একটি বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠা করেন। এই বিদ্যালয়ের তত্ত্বাধায়িকা হলেন কুমারী অ্যাক্রয়েড। ১৮৭৫ খ্রীষ্টাব্দের মার্চ মাসে 'হিন্দু মহিলা বিদ্যালয়' উঠে যায়। এই বছরেই ১লা জুন ওল্ড বালিগঞ্জে 'বঙ্গ মহিলা বিদ্যালয়' নামে আবার একটি প্রতিষ্ঠা করেন। এই বিদ্যালয়টিতে দ্বারকানাথ শিক্ষকতার কাজ থেকে কুলির কাজ পর্যন্ত নিজেই করতেন। 'বঙ্গমহিলা বিদ্যালয়টির শিক্ষা প্রণালী সরকারি শিক্ষা বিভাগে বিশেষ প্রশংসা পেয়েছিল। স্ত্রী শিক্ষার প্রসার ও স্ত্রী জাতির উন্নতির জন্য মেরি কার্পেন্টার একটি সভা প্রতিষ্ঠা করেছিলেন 'ন্যাশনাল ইন্ডিয়ান অ্যাসোসিয়েশন' নামে। এই সভার অন্যতম সভ্য ছিলেন দ্বারকানাথ তিনি খুব উৎসাহের সঙ্গে এই সভার কাজ করতেন। তিনি জাতীয় মহাসভা প্রতিষ্ঠিত হলে তাতে মহিলা ডেলিগেট হওয়ার দাবি নিয়েও আন্দোলন করেছিলেন। এর ফলে ১৮৮৯ খ্রীষ্টাব্দে কংগ্রেসের পঞ্চম অধিবেশনে বোম্বাইতে প্রথম ছয়জন মহিলা উপস্থিত হন। তার মধ্যে অন্যতম ছিলেন দ্বারকানাথ গঙ্গোপাধ্যায়ের স্ত্রী কাদম্বিনী গঙ্গোপাধ্যায় যিনি ১৮৭৮ খ্রীষ্টাব্দে প্রথম বিশ্ববিদ্যালয় পরীক্ষায় বসার অনুমতি পেয়েছিলেন। ১৮৭৮ খ্রীষ্টাব্দে আগষ্ট মাসে বঙ্গমহিলা বিদ্যালয়টি বেথুন স্কুলের সঙ্গে যুক্ত হয়ে একটি প্রথম শ্রেণীর বিদ্যাপীঠে পরিণত হয়। ১৮৭৮ সালে প্রবেশিকা পরীক্ষায় পাশ করার পর কাদমিম্বী ও চন্দ্রমুখীর আই এ পড়ার জন্য ১৮৭৯ সালে বেথুন স্কুলেই কলেজ বিভাগ খোলা হয়। পরে এঁদের জন্য বি.এ. ও এম.এ ক্লাস খোলা হয়। কিন্তু সে সময় কলকাতা মেডিক্যাল কলেজে মেয়েদের পড়ার অনুমতি দেওয়া হতনা। দ্বারকানাথ গঙ্গোপাধ্যায়, আনন্দামোহন বসু ও Thompson এর আইনানুগ মধ্যস্থাতায় ১৮৮৩ তে কলকাতা মেডিক্যাল কলেজে ছাত্রী ভর্তি শুরু হয়। প্রথম ছাত্রী কাদম্বিনী বসু মেডিক্যাল কলেজ থেকে পাশ করে উচ্চশিক্ষার জন্য ইংলন্ডে পড়তে যান। পরবর্তীকালে দেশে ফিরে ডাক্তারি করেন। ১৮৭৯ সালে বেথুনে কলেজ বিভাগ খোলা হয়। কিন্তু এদিকে স্বতন্ত্র কলেজের মর্যাদা দেওয়া হয়নি। ১৮৮৮তে কলেজ বিভাগকে সম্পূর্ণ স্বতন্ত্র কলেজের মর্যাদা দেওয়া হয়।

স্ত্রী শিক্ষা প্রসারে বঙ্কিমচন্দ্র চট্টোপাধ্যায়ের নামও বিশেষ উল্লেখযোগ্য। তিনি 'ন্যাশনাল ইন্ডিয়ান

অ্যাসোসিয়েশনের অন্যতম সদস্য ছিলেন। ১২৮১ খ্রীষ্টাব্দে 'বঙ্গদর্শন' পত্রিকায় 'প্রবীনা ও নবীনা'র কথোপকথনে আমরা স্ত্রী শিক্ষার সমর্থক রূপে বঙ্কিমচন্দ্রকে দেখতে পাই। স্ত্রী শিক্ষা আন্দোলনের ইতিহাসে শশিপদ বন্দ্যোপাধ্যায়ের অবদান বিশেষ উল্লেখযোগ্য তিনি ১৮৬৫ খ্রীষ্টাব্দে বরানগরে একটি বালিকা বিদ্যালয় স্থাপন করেন। বালিকা বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠা ছাড়াও তিনি মেরি কার্পেন্টারের সাহায্যে একটি নর্মাল স্কুল বা শিক্ষয়ত্রীদের শিক্ষন বিদ্যালয় প্রতিষ্ঠা করেন, এই উদ্দেশ্যে যে, মহিলারা শিক্ষিকার কাজ গ্রহণ করে ভবিষ্যতে আর্থিক বিষয়ে স্বনির্ভর হবে। স্ত্রী শিক্ষা প্রসারের অন্য এক উল্লেখযোগ্য নাম স্বামী বিবেকানন্দ। তিনি মনে প্রাণে বিশ্বাস করতেন সমাজকে এগিয়ে নিয়ে যাবার জন্য স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারের প্রয়োজন। তিনি ব্রহ্মচারিনীদের দ্বারা মেয়েদের শিক্ষা দেওয়ার ব্যবস্থা করেছিলেন। স্বামীজির স্ত্রী শিক্ষা পরিকল্পনাকে বাস্তব রূপ দিয়েছিলেন ভগ্নি নিবেদিতা। তিনি ১৮৯৮ খ্রীষ্টাব্দে সরকারি সাহায্য ছাড়াই বাগ বাজারের বোসপাড়া লেনের এক পুরাতন বাড়িতে বালিকা বিদ্যালয়ের কাজ শুরু করেন। বিদ্যালয় ছিল সম্পূর্ণ সবৈতনিক। ছাত্রী সংগ্রহ থেকে অর্থ সংগ্রহের কাজ সমস্তই তিনি নিজেই করতেন। লেখালেখি করে ও বক্তৃতা দিয়ে যা উপার্জন করতেন তার দ্বারাই স্কুলের ব্যয়ভার বহন করতেন। এছাড়া মিসেস ওলিবুল ও আমেরিকার কয়েকজন বান্ধবী তাঁকে আর্থিক সাহায্য করেছিল। ১৯০২ খ্রীষ্টাব্দে তাঁর প্রতিষ্ঠিত নিবেদিতা বালিকা বিদ্যালয়ের নিজস্ব ভবনের ভিত্তি প্রস্তর স্থাপিত হয়।

স্ত্রী শিক্ষার বিস্তারে এ সকল মহানুভব ব্যক্তিগণের প্রয়াস ছাড়া ষাটের দশক থেকে জনসাধারণের চেষ্টায় কলকাতা ও তার পার্শ্ববর্তী অঞ্চলে কিছু সভাসমিতি গড়ে স্ত্রী শিক্ষা বিস্তারে যাঁদের ভূমিকা অস্বীকার করা যায় না যেমন 'উত্তরপাড়া হিতকারী সভা' এই প্রতিষ্ঠান চন্দন নগর, মজিলপুর, দক্ষিণেশ্বর প্রভৃতি স্থানে ছয়টি বিদ্যালয় স্থাপন করে। ১৮৭৭ থেকে ১৮৯০ খ্রীষ্টাব্দ পর্যন্ত কলকাতায় যশোর ইউনিয়ন, বাখরগঞ্জ ইউনিয়ন বিক্রমপুর ইউনিয়ন, ফরিদপুর সুহৃদ সভা প্রভৃতি অনেকগুলি সভা স্থাপিত হয়েছিল। যে সভাগুলির মূল উদ্দেশ্য ছিল স্ত্রী শিক্ষার বিস্তার ঘটানো।

উনবিংশ শতাব্দীতে স্ত্রী শিক্ষা নিয়ে অনেক চিন্তাভাবনা ও লেখালেখি হয়েছে কিন্তু একাজ শহরের মধ্যেই সীমাবদ্ধ ছিল। শহরের সংকীর্ণ গন্ডির বাইরে গ্রামবাংলার জনসাধারণের সঙ্গে তার কোন যোগ সূত্র ছিল না। কিন্তু দেশ বিভাগের পর জীবিকার তাড়নায় ও অর্থনৈতিক প্রয়োজনে হিন্দুঘরের মেয়েরা লেখাপড়া শেখার প্রয়োজন অনুভব করে। এত চেষ্টা সত্ত্বেও দুইশতাব্দী পরেও বর্তমান সময়ে শিক্ষার ক্ষেত্রে স্ত্রীরা পুরুষদের চেয়ে এখনো কিছুটা পিছিয়ে। তাই একবিংশ শতাব্দীতে এসেও ভারত সরকার দ্বারা ২০১৫ সালে ২২ জানুয়ারী 'বেটি বাঁচাও বেটি পঢ়াও' কর্মসূচী সূচনা করা হয়। এই কর্ম সূচীর প্রধান উদ্দেশ্য কন্যাসন্তানের শিক্ষা ও সুরক্ষা। সারাদেশের কন্যাসন্তানের বিকাশ সম্পর্কে সচেতনতা ও দৃষ্টিভঙ্গি পরিবর্তনের উপর জোর দেওয়া হয়েছে এই কর্মসূচীর রূপায়ণে। সামাজিক বাধা কাটিয়ে নারীকে এগিয়ে আসতে হবে মানুষের ভূমিকায়, উৎকট আধুনিকতা ও স্থূল রুচির বিকৃত পথে না গিয়ে শোভন ও রুচিময়

চেতনায় উদ্বুদ্ধ হতে হবে নারী সমাজকে। তাহলেই সমাজে ফিরে আসবে নারীর মর্যাদা। জাতির উন্নয়ন ও অগ্রগতিতে নারী শিক্ষার আবশ্যিকতা অনস্বীকার্য। কারণ পরিবার সমাজ ও রাষ্ট্রের অর্ধেক হলো নারী। তাই রাষ্ট্রের সার্বিক কল্যাণে নারী শিক্ষার কোন বিকল্প নেই।

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী

১। বাংলার স্ত্রী শিক্ষা ১৮০০-১৮৫৬, যোগেশ চন্দ্র বাগল, বিশ্বভারতী গ্রন্থালয়,

২। উনিশ শতকে নারীমুক্তি আন্দোলন ও বাংলাসাহিত্য ১৮৫০-১৯০০, রণজিৎ বন্দ্যোপাধ্যায় ১৯৯৯

৩। বাংলার নবচেতনার ইতিহাস, ড: স্বপন বসু ১৯৭৫

৪। সাময়িক পত্রে বাংলার সমাজ চিত্র (দ্বিতীয় খন্ড) বিনয় ঘোষ ১৯৭৮

৫। রামতনু লাহিড়ী ও তৎকালীন বঙ্গসমাজ, শিবনাথ শাস্ত্রী, ১৯০৪

৬। বিবেকানন্দ ও সমকালীন ভারত (৩য় খন্ড) শঙ্করী প্রসাদ বসু।

श्रीकृष्णजन्मोत्सव पर रासनृत्य प्रस्तुत करतीं महाविद्यालय की छात्राएँ (14.08.2017)।

बसन्तपंचमी–सरस्वतीपूजनोत्सव पर सितारवादन की प्रस्तुति
संगीतविभाग (वादन) की छात्राओं द्वारा (22.01.2018)।

स्वतन्त्रता–दिवस पर ध्वजारोहण एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति (15.08.2017)।

संस्कृतविभाग में आयोजित संस्कृत प्रतियोगिताओं में सम्मिलित छात्राएँ एवं प्रध्यापकवर्ग (16.04.2018)।

सत्रारम्भ में संस्कृतविभाग द्वारा संस्कृतपाठचर्या (Induction programme) का आयोजन (22.08.2017)।

'संस्कृतिभारती' काशीप्रान्त द्वारा भारत माता मन्दिर, सिगरा वाराणसी में आयोजित ''भारत माता पूजन समारोह'' में महाविद्यालय की प्राध्यापिकाओं का सम्मान (23.01.2018)

संस्कृतविभागीय छात्राओं ने सुधाकर महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी में ''संस्कृतिभारती'' 'वन्देमातरम्' गानप्रतियोगिता के आयोजन में सर्वोत्तम स्थान अर्जित किया (25.08.2017)।

शिक्षण संस्थाओं की संस्थापिका श्रीमती विद्या देवी स्मृति–समारोह ''विद्यांजलि'' में संगीतविभाग (वादन) की छात्राओं द्वारा सितारवादन (07.10.2017)।

हरिश्चन्द्र बा.इ.कॉ., वाराणसी 'वन्देमातरम्–कार्यशाला' में प्रशिक्षक श्रद्धा, पूजा एवं अंकिता (संस्कृतविभाग) (01.05.2017–11.05.2017)

राजकीय जिला पुस्तकालय, वाराणसी में जनपदस्तरीय संस्कृतसम्भाषण प्रतियोगिता में तृतीय स्थान अनुरंजिका चतुर्वेदी (12.09.2017)।

''ज्ञानप्रवाह'' वाराणसी में सामान्य ज्ञानप्रतियोगिता में संस्कृत एवं प्रा.भा.इति.सं. एवं पुरातत्त्वविभाग की छात्राएँ डॉ0 त्रिपुरसुन्दरी के साथ (25.09.2017)।

राजनीतिशास्त्रविभाग में संगोष्ठी में विशिष्ट व्याख्यान द्वारा सी.एस.पी., कानपुर के निदेशक डॉ. अनिल कुमार वर्मा (11.10.2017)।

श्री आर्य महिला हितकारिणी महापरिषद्–98वाँ स्थापना दिवस समारोह
मंचस्थ मुख्य अतिथि उ.प्र. लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष श्री अनिल यादव, महापरिषद् के पदाधिकारी एवं छात्राओं द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति (14.12.2017)।

इतिहासविभाग तथा संस्कृतिभारती, काशी द्वारा 'मणिकर्णिका रानी लक्ष्मीबाई' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी एवं सम्मान समारोह का आयोजन (17.11.2017)।

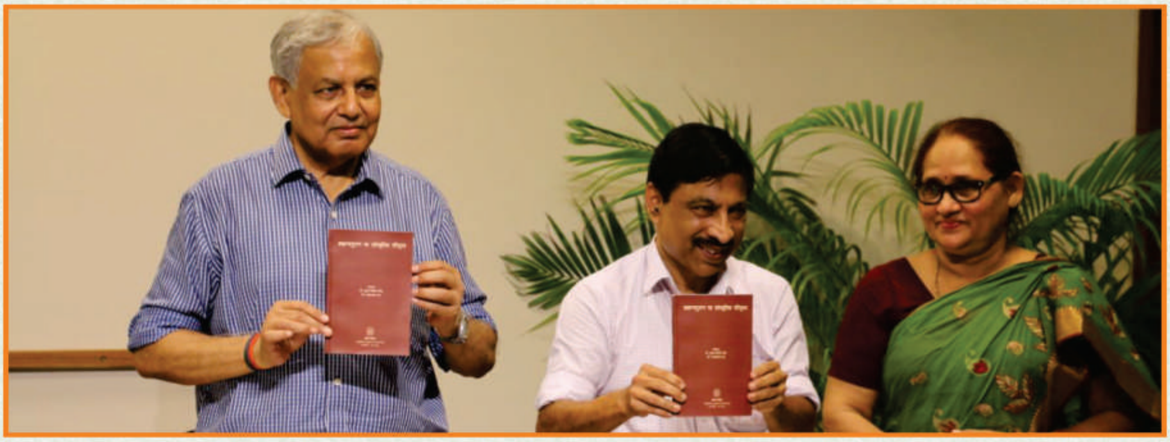

''ज्ञानप्रवाह'' वाराणसी में डॉ. चन्द्रकान्ता राय की पुस्तक का लोकार्पण महात्मा गान्धी काशी विद्यापीठ के कुलपति प्रो. पृथ्वीश नाग तथा प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् श्री के.के. मुहम्मद द्वारा (01.08.2017)।

गणतन्त्रदिवस के अवसर पर महाविद्यालय की छात्राओं द्वारा ''वन्देमातरम्'' गानप्रस्तुति (26.01.2018)।

दर्शनशास्त्र विभाग द्वारा दिनांक 11 फरवरी, 2018 को बी.ए. की छात्राओं को शैक्षणिक भ्रमण हेतु सीतामढ़ी, भदोही, वाराणसी ले जाया गया।

दर्शनशास्त्रविभाग में 16.02.2018 को भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के सहयोग से आयोजित व्याख्यान में प्रो. सच्चिदानन्द मिश्र, दर्शन एवं धर्मविभाग, का.हि.वि.वि. तथा प्रो. आर.पी. द्विवेदी, गाँधी अध्ययन पीठ, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ।

दर्शनशास्त्रविभाग में 14.03.2018 को भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के सहयोग से आयोजित व्याख्यान में प्रो. सुधाकर मिश्र तथा प्रो. रामपूजन पाण्डेय (सं.सं.वि.वि.)। इस अवसर पर डॉ. शुचि तिवारी की पुस्तक का विमोचन किया गया।

विश्वसंस्कृतकुटुम्बकम्, आमुखपटलसमूह (facebook) द्वारा आदिशंकराचार्य जयन्ती से बुद्धजयन्तीपर्यन्त (20–30 अप्रैल, 2018) आयोजित online संस्कृत छन्दोगानस्पर्धा में द्वितीय प्रियंका पाण्डेय तथा तृतीय अनुष्का (संस्कृत)।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय–युवा महोत्सव ''स्पन्दन–2018'' में निर्णायक डॉ. चन्द्रकान्ता राय, निर्णायक मण्डल (संस्कृत काव्यपाठ) के साथ (15.03.2018)।

स्टॉफ इन्रिचमेंट एण्ड इम्पावरमेंट कमेटी की ओर से आयोजित ''उच्चशिक्षा–व्यवस्था'' पर विचारगोष्ठी में मुख्य वक्ता एन.सी.ई.आर.टी. के पूर्व निदेशक प्रो. ए.के. शर्मा, संस्था के पदाधिकारियों, समितिसदस्यों के साथ (30.03.2018)।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय–युवा महोत्सव ''स्पन्दन–2018'' में पुरस्कृत छात्राएँ प्राचार्या एवं प्राध्यापिकाओं के साथ (16.03.2018)।

पूर्वच्छात्रसम्मेलन में सम्मानित 1976 से 1986 तक की पूर्वच्छात्राएँ (13.04.2018)।

पूर्वच्छात्रसम्मेलन के अवसर पर महाविद्यालय में नियुक्त पूर्वच्छात्राओं द्वारा
कुलगीत एवं लोकगीत की प्रस्तुति (13.04.2018)।

IQAC एवं SEEC द्वारा आयोजित द्विदिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला में प्रो. जॉन जैकब कटकैयम (केरल), प्रो. कृपाशंकर जायसवाल, प्रबन्धक डॉ. शशिकान्त दीक्षित, प्राचार्या प्रो. रचना दूबे, संयोजिका सुश्री आरती श्रीवास्तव तथा डॉ. चन्द्रकान्ता राय (23.04.2018)।

Quality Assurance in Higher Education विषयक उर्पयुक्त कार्यशाला में विशेषज्ञ वक्ता प्रो. राकेश रमन (का.हि.वि.वि.) तथा डॉ. सन्दीप गिरि (म.गा.का.वि.) (24.04.2018)।

संस्कृतविभाग में विशिष्ट व्याख्यान कार्यक्रम में वक्ता प्रो. सुधाकर मिश्र, स.स.वि.वि. तथा पूर्वच्छात्रा एवं दर्शनशास्त्रविभाग की असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. ममता गुप्ता (25.04.2018)।

विश्वविद्यालय–युवा–महोत्सव स्पन्दन–2018 में संगीतविभाग की प्रस्तुति (14.03.2018)।

संगीतविभाग (वादन) द्वारा 'संवाद' कार्यक्रम के अन्तर्गत विशिष्ट व्याख्यान (20.03.2018)।

संगीतवादन विभाग द्वारा पं0 रविशंकर के जन्मदिवस–समारोह का आयोजन (07.04.2018)।

प्रा.भा.इति.सं. एवं पुरातत्त्वविभाग द्वारा बौद्धसंगीतियों के महत्त्व विषय पर व्याख्यान (26.10.2018)।

प्रा.भा.इति.सं. एवं पुरातत्त्वविभाग की ओर से ज्ञानप्रवाह, वाराणसी में शैक्षिक भ्रमण (17.03.2018)

निखिल भारत बंग साहित्य सम्मेलन के पर्यवेक्षक (06.08.2017)।

पूर्वच्छात्रसमिति द्वारा नवीन भवन, द्वितीय तल पर वाटरकूलर प्रदान किया गया (13.4.2018)।

राष्ट्रीय सेवा योजना एवं इतिहास विभाग द्वारा यूनिसेफ़ के सहयोग से बालविवाह एवं लिंगभेद के प्रतिरोध हेतु प्रशिक्षण कार्यशाला (26.12.2017)।

बंगलाविभाग द्वारा 'अखिल भारतीय निबन्ध प्रतियोगिता' का आयोजन (17 अगस्त, 2017)।

15 दिवसीय स्वच्छता–पखवारा (01 सितम्बर, 2017)।

स्वच्छता–पखवारा अभियान के अन्तर्गत छात्राओं के साथ राज्य विधि एवं खेलकूद मंत्री डॉ.नीलकण्ठ तिवारी तथा प्रबन्धक डॉ0 शशिकान्त दीक्षित (16.09.2017)।

गगनेन्द्र नाथ ठाकुर सार्द्धशताब्दि दिवस पर लघुकथा पोस्टर प्रतियोगिता (18 सितम्बर, 2017)।

बंगलाविभाग की छात्राओं द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय भाषादिवस के अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम (21.02.2018)।

राष्ट्रीय संगोष्ठी ''रवीन्द्र नाथ टैगोर'' (07 अप्रैल, 2018)

संगीतविभाग (वादन) में तन्त्रीनाद–कार्यशाला (21–23 सितम्बर, 2017)।

आर्य महिला पी.जी.कॉलेज, वाराणसी

नेट/जे.आर.एफ. में उत्तीर्ण छात्राएँ (2017-18)

संस्कृतविभाग

नेहा गुप्ता
नेट, नवम्बर 2017

सुमन कुमारी
नेट, नवम्बर 2017

हेमलता मिश्रा
नेट, नवम्बर 2017

पूजा कुमारी
जे.आर.एफ., नवम्बर 2017

संध्या पटेल
जे.आर.एफ., मार्च 2018

श्रीमती विद्या देवी

(आविर्भाव 08.10.1900, तिरोभाव 04.11.1988)

संस्थापिका, श्री आर्य महिला हितकारिणी महापरिषद्–शिक्षण संस्थाएँ